इकाई III शिक्षार्थी तथा अधिगम प्रक्रिया

PART 1 -वृद्धि एवं विकास 7

वृद्धि एवं विकास की संकल्पना (Concept of Growth and Development) 7

मानव वृद्धि एवं विकास का अर्थ 8

मानव वृद्धि एवं विकास में अन्तर 9

वृद्धि एवं विकास में अन्तर 9

वृद्धि एवं विकास के सिद्धान्त (Principles of Growth and Development) 10

निरन्तरता का सिद्धान्त 10

वृद्धि और विकास की दर एकसमान नहीं रहती 11

विकास क्रम की एकरूपता 11

वैयक्तिक अन्तर का सिद्धान्त 11

सामान्य से विशिष्ट की ओर 11

परस्पर सम्बन्ध का सिद्धान्त 11

एकीकरण का सिद्धान्त 12

विकास लम्बवत् सीधा न होकर वर्तुलाकार होता है 12

विकास की भविष्यवाणी की जा सकती है 12

विकास की दिशा का सिद्धान्त 12

आंशिक पुनर्बलन का सिद्धान्त 13

मानव विकास की अवस्थाएँ (Stages of Human Development) 13

शैशवकाल 13

बाल्यकाल (Childhood) 14

पूर्व बाल्यकाल 14

उत्तर बाल्यकाल 14

किशोरावस्था 14

युवा प्रौढ़ावस्था 15

परिपक्व प्रौढ़ावस्था 15

वृद्ध प्रौढ़ावस्था 15

(Phases of Growth and Development) 16

www.studyofeducation.com

शारीरिक एवं गामक विकास 16
मानसिक विकास 17
सांवेगिक विकास 17
क्रियात्मक विकास 18
भाषायी विकास 18
सामाजिक विकास 19
संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ (Cognitive Processes) 20
संज्ञानात्मक विकास (Cognitive Development) 20
जीन पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त 20
पियाजे के संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएँ 21
इन्द्रियजनित गामक अवस्था (जन्म से 2 वर्ष तक) 21
पूर्व संक्रियात्मक अवस्था (2 से 7 वर्ष तक) 22
मूर्त संक्रियात्मक अवस्था (7 से 11 वर्ष तक) 22
औपचारिक या अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था (11 वर्ष से आगे) 22
जीन पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का शैक्षिक महत्त्व 23
जीन पियाजे द्वारा दिए गए कुछ अन्य सिद्धान्त निम्न हैं 23
निर्माण और खोज का सिद्धान्त 23
कार्य-क्रिया का अर्जन 24

व्यक्तित्व (Personality) 25
व्यक्तित्व के निर्धारक तत्त्व 26
जैविक तथा समाज-सांस्कृतिक 26
सांस्कृतिक एवं सामाजिक प्रभाव 27
भाविक दशा 27
शरीर गठन 28
व्यक्तित्व के सिद्धान्त 28
मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त 28
व्यावहारिक सिद्धान्त 30
फ्रॉयड का नव-विश्लेषणात्मक सिद्धान्त 31
कार्ल रोजर्स का व्यक्तित्व का सांवृत्तिक (स्व) सिद्धान्त 32
व्यक्तित्व की गतिकी 33
व्यक्तित्व का विकास 34

www.studyofeducation.com

गोर्डन आलपोर्ट का व्यक्तित्व सिद्धान्त 34
मैक्स वर्थिमर का व्यक्तित्व सिद्धान्त 36
कुर्त कोफ्का का व्यक्तित्व सिद्धान्त 36
व्यक्तित्व के प्रकार 37
मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर 38
मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health) 39
मानसिक स्वच्छता (Mental Hygiene) 41
रक्षात्मक युक्तियाँ या मनोरचनाएँ 41
बुद्धि का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Intelligence) 43
बुद्धि के सिद्धान्त या उपागम 45
एक-कारक सिद्धान्त 45
द्वि-कारक सिद्धान्त 45
बहु-कारक सिद्धान्त 45
प्रतिदर्श सिद्धान्त 46
समूह-तत्त्व सिद्धान्त 46
पदानुक्रमिक सिद्धान्त 47
सामाजिक बुद्धि की संकल्पनाएँ (Concept of Social Intelligence) 47
सामाजिक बुद्धि 47
अमूर्त बुद्धि 48
मूर्त बुद्धि 48
बहुआयामी या बहुल बुद्धि (Multi-Dimensional or Multiple Intelligence) 48
संवेगात्मक बुद्धि (Emotional Intelligence) 49
सांवेगिक बुद्धि सिद्धान्त 49
स्टर्नबर्ग का बुद्धि का सिद्धान्त (Theory of Intelligence of Sternberg) 50
स्टर्नबर्ग का त्रितन्त्र सिद्धान्त (Triarchic Theory of Sternberg) 51
स्टर्नबर्ग के त्रितन्त्र सिद्धान्त का वर्णन निम्न है 51
सन्दर्भात्मक उपसिद्धान्त 51
अनुभवजन्य उपसिद्धान्त 51
घटक उपसिद्धान्त 51
स्टर्नबर्ग के सिद्धान्त की शैक्षिक उपयोगिता 53

www.studyofeducation.com

हावर्ड गार्डनर का बुद्धि का सिद्धान्त (Theory of Intelligence of Gardner) 53
बुद्धि का निर्धारण (Assessment of Intelligence) 55
बुद्धि परीक्षण एवं मानसिक आयु 57
बुद्धि परीक्षण 57
मानसिक आयु 57
समस्या समाधान की संकल्पनाएँ (Concepts of Problem Solving) 59
समस्यात्मक परिस्थिति (Problematic Situation) 60
समस्या समाधान की अवस्थाएँ 61
तैयारी 62
विकल्प 62
उत्पादन कियाएँ 62
निर्णय 63
उद्वेदन 63
समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारक या अवरोधक 63
समस्या समाधान की विधियाँ या उपाय 64
यादृच्छिक अन्वेषण विधि 64
स्वतः शोध अन्वेषण विधि 65
साधन-साध्य विश्लेषण 65
पश्चगामी अन्वेषण 65
गहन चिन्तन (Critical Thinking) 66
गहन चिन्तन के साधन 67
मेटासंज्ञान (Metacognition) 69
मेटास्मृति (Metamemory) 69
मेटास्मृति के विभिन्न पहलू 70
मेटासंज्ञानात्मक मॉडल 70
मेटासंज्ञानात्मक रणनीति तथा आत्म-नियमन 71
सृजनात्मकता (Creativity) 72
सृजनात्मकता प्रक्रिया के सोपान 72
सृजनात्मकता सम्बन्धी मनोवैज्ञानिकों के विचार 74
गेटजेल के विचार 74
टॉरेन्स के विचार 75

www.studyofeducation.com

असाधारण उपयोग परीक्षण 77
बुद्धि तथा सृजनात्मकता में सम्बन्ध 77

अधिगम या ज्ञानार्जन (Learning) 80
अधिगम की परिभाषाएँ 80
अधिगम की प्रक्रिया (Process of Learning) 81
अधिगम के नियम (Principles of Learning) 82
1. सीखने के मुख्य नियम - 83
2. सीखने के सहायक नियम 85
अधिगम के सिद्धान्त (Theories of Learning) 86
अधिगम के व्यवहारपरक सिद्धान्त 86
थॉर्नडाइक का व्यवहारवादी या सम्बन्धवाद सिद्धान्त (प्रयत्न तथा भूल सिद्धान्त) 86
थॉर्नडाइक का बिल्ली व मछली प्रयोग 87
पावलॉव का क्लासिकी (शास्त्रीय) अनुबन्धन सिद्धान्त 89
बी. एफ. स्कीनर का सक्रिय अनुबद्ध सिद्धान्त 91
स्कीनर का कबूतर पर प्रयोग 91
हल्ल का पुनर्बलन सिद्धान्त 93
अधिगम के संज्ञानात्मक सिद्धान्त 94
टॉलमैन का अधिगम सिद्धान्त 99
ब्रूनर के अधिगम का सिद्धान्त 99
अधिगम के संज्ञानात्मक उपागम (Cognitive Approaches of Learning) 101
बंडूरा का प्रयोग 102
सामाजिक अधिगम के उपाय 103
सामाजिक अधिगम के कारक 104

सामाजिक सक्षमता (Social Competence) 106
सामाजिक सक्षमता का शैक्षिक निहितार्थ 107

सामाजिक संज्ञान (Social Cognition) 108
सामाजिक संज्ञान का तत्त्व : स्कीमा 109
स्कीमा के दोष 110

समाज एवं सामाजिक सम्बन्ध की अवधारणा 111
सामाजिक सम्बन्ध (Social Relations) 112

www.studyofeducation.com

समाजीकरण (Socialisation) 113

शैशवावस्था में सामाजिक विकास 115

बाल्यकाल में सामाजिक विकास 115

किशोरावस्था में सामाजिक विकास 115

समाजीकरण की प्रक्रियाएँ 116

समाजीकरण के सिद्धान्त 117

कूले का सिद्धान्त 117

फ्रॉयड का सिद्धान्त 'मनोविश्लेषण' 117

समाजीकरण की विशेषताएँ 118

समाजीकरण के कारक एवं संस्थाएँ 118

समाजीकरण के लक्ष्य 119

मार्गदर्शन (Guidance) 120

मार्गदर्शन की प्रकृति 122

मार्गदर्शन के सिद्धान्त 123

मार्गदर्शन की आवश्यकता 124

मार्गदर्शन के प्रकार 126

शैक्षिक मार्गदर्शन 126

शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर मार्गदर्शन 127

प्राथमिक विद्यालयों में मार्गदर्शन 127

माध्यमिक विद्यालयों में मार्गदर्शन 128

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर मार्गदर्शन 128

उच्च शिक्षा हेतु मार्गदर्शन 128

व्यावसायिक मार्गदर्शन 129

व्यक्तिगत मार्गदर्शन 129

स्वास्थ्य मार्गदर्शन 129

सामाजिक मार्गदर्शन 130

मार्गदर्शन में तकनीकों का प्रयोग 131

1. प्रमापीकृत तकनीक 131

अभियोग्यता परीक्षण 133

रुचि परीक्षण 134

उपलब्धि या निष्पत्ति परीक्षण 134

www.studyofeducation.com

2. अप्रमापीकृत तकनीक 135
प्रश्नावली 135
प्रक्षेपण 136
समाजमिति 137
संचयी वृत्ति 138
साक्षात्कार 139
परामर्शन या उपबोधन (Counselling) 140
परामर्शन की परिभाषाएँ 141
परामर्शन प्रक्रिया के मुख्य अंग 141
परामर्शन के उद्देश्य 142
परामर्शन के उपागम (Approaches to Counselling) 143
निदेशात्मक परामर्शन 143
अनिदेशात्मक या गैर-निदेशात्मक परामर्शन - 144
समन्वित परामर्शन 145
संज्ञानात्मक-व्यवहारवादी परामर्शन (एल्बर्ट एलिस REBT) 145
संज्ञानात्मक-व्यवहारवादी परामर्शन में एल्बर्ट एलिस का योगदान 146
एल्बर्ट एलिस REBT का महत्त्व 146
मानवतावादी या प्रभाववादी परामर्शन 146
व्यक्ति केन्द्रित परामर्शन 147
परामर्शन के सिद्धान्त 148

www.studyofeducation.com

PART 1 -वृद्धि एवं विकास

वृद्धि एवं विकास की संकल्पना (Concept of Growth and Development)

वृद्धि परिवर्तन की एक प्रक्रिया है। सामान्य बालक वृद्धि करता हुआ प्राणी है। ज्यों-ज्यों समय बीतता है, बालक बढ़ता है। बढ़ने से यहाँ तात्पर्य यह है कि उसकी लम्बाई, भार, गति, आकार प्रत्यक्षीकरण, संवेगात्मक नियन्त्रण, सामाजिकता आदि में परिवर्तन होता है। वृद्धि के साथ-साथ बालक में विकास भी होता रहता है। विकास जीवनपर्यन्त क्रमानुसार चलने वाली प्रक्रिया है।

हरलॉक के अनुसार, “विकास की अवस्था का प्रभाव दूसरी अवस्था पर पड़ता रहता है।"

टॉयलर के अनुसार, “विकास एक दिशा की ओर जाने वाला मार्ग है अर्थात् विकास जब हो जाता है, तो विकासहीनता की स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती।" वृद्धि और विकास दो समान अर्थ में प्राय: प्रयुक्त किया जाता है, किन्तु समाजविज्ञानों और मानवतावादी विषयों में वृद्धि और विकास में पर्याप्त अन्तर किया जाता है। सामाजिक विज्ञानों में प्राय: वृद्धि को परिमाणात्मक परिवर्तन की प्रक्रिया के रुप में और विकास को गुणात्मक परिवर्तन की प्रक्रिया के रुप में देखा जाता है।

वृद्धि में किसी एक पक्ष के परिवर्तन की बात की जाती है और विकास में सभी पक्षों के विकास का विचार निहित है। शरीर के किसी एक पक्ष या भाग के परिवर्तन का द्योतक वृद्धि है और सम्पूर्ण व्यवहार या शरीर के परिवर्तन का द्योतक विकास है। बालक केवल वृद्धि नहीं होती, वह अभिवृद्धि के साथ-साथ विकास भी करता जाता है। विकास में वृद्धि का विचार निहित है। विकास एक व्यापक पद है और वृद्धि विकास का एक प्रमुख चरण है। अतः विकास में वृद्धि निहित होता है।

मानव वृद्धि एवं विकास का अर्थ

आज के युग में ज्ञान-विज्ञान में विकसित होने के कारण मानव विकास को लिपिबद्ध कर लिया जाता है। मानव विकास के इतिहास में ज्ञान-विज्ञान की अनेक नई शाखाओं का विकास हुआ है। मनोविज्ञान भी व्यक्ति के गर्भ में आने लेकर मृत्यु के विकास तक के अनेक नवीन पहलुओं को प्रस्तुत करता है, जिससे नवीन उपलब्धियाँ होती हैं। मानव वृद्धि से तात्पर्य उसके शरीर के बाह्य एवं आन्तरिक अंगों में होने वाली वृद्धि और उनके आकार, भार और कार्यक्षमता में होने वाली वृद्धि से होता है और मानव विकास से तात्पर्य उसकी वृद्धि के साथ-साथ उसके शारीरिक एवं मानसिक व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों से होता है।

हम जानते हैं कि मनुष्य की वृद्धि परिपक्वता प्राप्त करने के बाद रुक जाती है, परन्तु उसके शारीरिक एवं मानसिक व्यवहार है पानव विकास एक निरन्तर होने वाली प्रक्रिया है, जिसे निम्नलिखित परिभाषाओं के

ड्रवर के अनुसार, “विकास प्राणी में प्रगतिशील परिवर्तन है, जो निश्चित लक्ष्यों की ओर निरन्तर निर्देशित होता रहता है।"

हरलॉक के अनुसार, “विकास वृद्धि तक सीमित नहीं, अपितु इसमें परिवर्तनों का वह प्रगतिशील क्रम निहित है, जो परिपक्वता के लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है। विकास के परिणामस्वरूप व्यक्ति में नवीन विशेषताएँ और नवीन योग्यताएँ प्रकट होती हैं।"

www.studyofeducation.com

फ्रैंक के अनुसार, "वृद्धि से तात्पर्य कोशिकाओं में होने वाली वृद्धि से होता है; जैसे-लम्बाई और भार में वृद्धि, जबकि विकास से तात्पर्य प्राणी में होने वाले सम्पूर्ण परिवर्तनों से होता है।" वास्तव में प्रत्येक परिवर्तन को हम विकास नहीं कह सकते, प्रगतिशील परिवर्तन ही विकास की कोटि में आते हैं, परन्तु विकास कभी परिपक्वता को प्राप्त नहीं होता, यह निरन्तर चलता रहता है।

मानव वृद्धि एवं विकास में अन्तर

वृद्धि एवं विकास शब्द प्रायः पर्यायवाची लगते हैं, दोनों में कोई अन्तर नहीं लगता। दोनों यह प्रकट करते हैं कि गर्भाधान के समय से किसी विशेष समय तक किसी प्राणी में कितना परिवर्तन आया है। इस परिवर्तन की प्रक्रिया में वातावरण की शक्तियों, शिक्षा एवं वंशानुक्रम का विशेष योगदान होता है, जिससे हमारे व्यक्तित्व के सभी पक्षों-शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक एवं नैतिक आदि की उचित वृद्धि और विकास होता है।

इस प्रकार वृद्धि एवं विकास दोनों शब्दों का प्रयोग बालक में आयु बढ़ने के साथ-साथ होने वाले परिवर्तनों के लिए किया जाता है, परन्तु यदि इनका गहनता से अध्ययन किया जाए, तो वृद्धि एवं विकास में पर्याप्त अन्तर देखने को मिलता है।

www.studyofeducation.com

वृद्धि एवं विकास में अन्तर

मानव विकास	**मानव वृद्धि**
विकास शब्द केवल परिणाम सम्बन्धी परिवर्तनों को व्यक्त न करते हुए गुणात्मक परिवर्तनों; जैसे-कार्यक्षमता, कार्यकुशलता, व्यवहार में प्रगति आदि को प्रदर्शित करता है।	वृद्धि शब्द परिमाण सम्बन्धी परिवर्तनों के लिए प्रयुक्त होता है; जैसे-बच्चे की आयु बढ़ने के साथ-साथ उसके आकार, लम्बाई, ऊँचाई एवं भार आदि में होने वाले परिवर्तन।
विकास शब्द अपने आप में एक विस्तृत अर्थ रखता है। यह व्यक्ति में होने वाले सभी परिवर्तनों को प्रकट करता है। वृद्धि इसका ही एक भाग है।	वृद्धि मानव की सम्पूर्ण विकास प्रक्रिया का एक चरण मात्र है।
बालक विकास एक सतत प्रक्रिया है, जो आजीवन चलती है।	वृद्धि की क्रिया आजीवन नहीं चलती बालक द्वारा परिपक्वता ग्रहण करने के साथ-साथ यह समाप्त हो जाती है।

विकास प्रकार्यात्मक परिवर्तनों से सम्बन्धित है।	वृद्धि संरचनात्मक परिवर्तनों से सम्बन्धित है।
विकास शब्द कार्यक्षमता, कार्यकुशलता और व्यवहार में आने वाले गुणात्मक परिवर्तनों को भी प्रकट करते हैं। इन परिवर्तनों को प्रत्यक्ष रुप में मापना कठिन है। इन्हें अप्रत्यक्ष तरीकों; जैसे व्यवहार करते हुए बालक का निरीक्षण करते हुए आदि से ही मापा जा सकता है।	वृद्धि के स्वरुप में होने वाले परिवर्तन बिना किसी विशेष प्रयास किए दृष्टिगोचर हो सकते हैं, साथ ही इन्हें मापा भी जा सकता है।
दूसरी ओर विकास भी वृद्धि के बिना सम्भव हो सकता है। सामान्यतः यह देखा जाता है कि कुछ बच्चों की ऊँचाई, आकार एवं भार में वृद्धि नहीं हो पाती है, परन्तु उनकी कार्यक्षमता तथा शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक योग्यता में सदैव प्रगति होती रहती है।	वृद्धि के साथ-साथ सदैव विकास होना आवश्यक नहीं है। मोटापे के कारण एक बालक के भार में वृद्धि हो सकती है, परन्तु इस वृद्धि से उसकी कार्यक्षमता एवं कार्यकुशलता में भी वृद्धि हो, आवश्यक नहीं।

www.studyofeducation.com

वृद्धि एवं विकास के सिद्धान्त (Principles of Growth and Development)

विगत कुछ वर्षों में विकासात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में अनेक अनुसन्धान कार्य हुए हैं। जन्म से लेकर प्रौढ़ता तक बालक में होने वाले परिवर्तनों को सूक्ष्म दृष्टि से देखने का प्रयास किया गया है। इन अध्ययनों के आधार पर अभिवृद्धि और विकास के कुछ सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए हैं, जिनका उल्लेख निम्नलिखित है

1. निरन्तरता का सिद्धान्त

बालक में ही नहीं शिशु से लेकर प्रौढ़ तक सदा परिवर्तन होता रहता है। कोई व्यक्ति जैसा आज है, वैसा कल नहीं रहेगा। यही नहीं इस क्षण व्यक्ति जैसा है, दूसरे क्षण वह वैसा नहीं रहेगा। कुछ परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं, कुछ अज्ञात रुप में होते रहते हैं, किन्तु परिवर्तन सदा होते रहते हैं। ये परिवर्तन रुक-रुक कर अचानक नहीं होते वरन् लगातार होते रहते हैं अर्थात् परिवर्तनों की निरन्तरता विद्यमान रहती है।

2. वृद्धि और विकास की दर एकसमान नहीं रहती

मानव विकास की दर सभी अवस्थाओं में एकसमान नहीं रहती। शैशवावस्था के प्रारम्भिक समय में विकास तीव्र गति से होता है, परन्तु बाद के वर्षों में यह मन्द हो जाता है। किशोरावस्था के प्रारम्भ में इसकी गति में पुनः तीव्र वृद्धि होती है, परन्तु यह वृद्धि अधिक समय तक नहीं रहती। इस प्रकार वृद्धि और विकास की गति में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं।

3. विकास क्रम की एकरुपता

विकास की गति सभी अवस्थाओं में समान नहीं होती, परन्तु विकास क्रम में कुछ एकरुपता के दर्शन भी होते हैं। इस क्रम में एक ही जाति के सभी सदस्यों में एक जैसी विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। उदाहरण के लिए, मानव जाति के सभी बालकों की वृद्धि सिर की ओर से प्रारम्भ होती है। इस प्रकार बालकों के गत्यात्मक और भाषा विकास में भी एक निश्चित प्रतिमान और क्रम के दर्शन होते हैं।

www.studiestoday.com

4. वैयक्तिक अन्तर का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार बालकों का विकास एवं वृद्धि उनकी वैयक्तिकता के अनुरुप होते हैं। वे अपनी स्वाभाविक गति से ही वृद्धि एवं विकास के विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढ़ते रहते हैं और इसी कारण उनमें पर्याप्त विभिन्नताएँ देखने को मिलती हैं। कोई भी एक बालक वृद्धि और विकास की दृष्टि से किसी अन्य बालक के समरुप नहीं होता।

5. सामान्य से विशिष्ट की ओर

विकास की गति सामान्य से विशिष्ट की ओर होती है। पहले यह माना जाता था कि शिशु विशिष्ट क्रियाएँ पहले करता है, तत्पश्चात् सामान्य क्रिया की ओर बढ़ता है, किन्तु विकासात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में किए गए अनुसन्धानों से यह निष्कर्ष निकलता है कि सभी प्रकार के विकास पहले सामान्य रुप में होते हैं, बाद में विशिष्ट रुप में; जैसे—पहले बालक अपने सम्पूर्ण शरीर का संचालन करता है, बाद में अंग विशेष का। कॉगहिल ने अपने अध्ययन के द्वारा यह निष्कर्ष निकाला है कि पहले सिर और देह का मुख्य भाग संचालित होता है, तत्पश्चात् हाथ-पैर की उँगलियों का संचालन हो पाता है।

6. परस्पर सम्बन्ध का सिद्धान्त

विकास की सभी दशाएँ-शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक आदि एक-दूसरे से परस्पर सम्बन्धित हैं। इनमें किसी भी एक दिशा में होने वाला विकास अन्य सभी दिशाओं में होने वाले विकास को प्रभावित करता है जैसे, जिन बालकों में औसत से ज्यादा

वृद्धि होती है, वे शारीरिक एवं सामाजिक विकास की दृष्टि में भी आगे होते हैं। विकास के किसी एक क्षेत्र में पाई जाने वाली न्यूनता या कमी अन्य क्षेत्रों में हो रही प्रगति में बाधक सिद्ध होती है।

7. एकीकरण का सिद्धान्त

विकास की प्रक्रिया एकीकरण के सिद्धान्त का पालन करती हुई आगे बढ़ती है। इसके अनुसार बालक पहले अपने सम्पूर्ण अंग को, फिर अंग के भागों को चलाना सीखता है तथा इसके बाद उन भागों में एकीकरण करना सीखता है। उदाहरण के लिए, एक बालक पहले पूरे हाथ को, फिर उँगलियों को और फिर हाथ एवं उँगलियों को एकसाथ चलाना सीखता है।

8. विकास लम्बवत् सीधा न होकर वर्तुलाकार होता है

बालक का विकास लम्बवत् सीधा (Linear) न होकर वर्तुलाकार (Spiral) होता है। वह एकसमान गति से सीधा नहीं चलता, बल्कि बढ़ते हुए पीछे हटकर अपने विकास को परिपक्व एवं स्थायी बनाते हुए (वर्तुलाकार आकृति की तरह) आगे बढ़ता है।

किसी एक अवस्था में तीव्र गति से तथा किसी अन्य अवस्था में विकास गति धीमी होते हुए स्थायित्व लेते हुए आगे बढ़ती है, ताकि वृद्धि एवं विकास को स्थायी रुप दिया जा सके।

www.studyofeducation.com

9. विकास की भविष्यवाणी की जा सकती है

बालक की वृद्धि एवं विकास की गति को ध्यान में रखकर उसके आगे बढ़ने की दिशा और स्वरुप के विषय में भविष्यवाणी की जा सकती है। उदाहरण के लिए, एक बालक की कलाई की हड्डियों का एक्स किरणों से लिए जाने वाले चित्र द्वारा बाल्यकाल यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उसका आकार आगे जाकर किस प्रकार का होगा। इसी प्रकार बालक की मानसिक योग्यताओं के ज्ञान के सहारे उसके आगे के विकास के बारे में पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।

10. विकास की दिशा का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार विकास की प्रक्रिया पूर्व निश्चित दिशा में आगे बढ़ती है। कुप्पू स्वामी ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि विकास Cephalo-Caudal एवं Proxima-Distal क्रम में होता है। Cephalo-Caudal क्रम में विकास लम्बवत् रुप में सिर से पैर की ओर होता है तथा Proxima-Distal क्रम के अनुसार विकास का क्रम केन्द्र से प्रारम्भ होते हुए बाहर की ओर होता है। जैसे-पहले रीढ़ की हड्डी का विकास होता है, उसके बाद भुजाओं, हाथ तथा हाथ की उँगलियों का, इसके पश्चात् इन सब का संयुक्त विकास होता है।

11. आंशिक पुनर्बलन का सिद्धान्त

प्रतिपादक जॉन डोलार्ड नील मिलर हैं। पुनर्बलन से तात्पर्य किसी अनुक्रिया के बार-बार दोहराने की सम्भावना बढ़ाने से है। पुनर्बलन के माध्यम से नवीन प्रतिक्रियाओं को भी जन्म मिलता है।

12. वृद्धि और विकास की क्रिया वंशानुक्रम और वातावरण का संयुक्त परिणाम है

बालक की वृद्धि और विकास को किसी स्तर पर वंशानुक्रम और वातावरण की संयुक्त देन माना जाता है। दूसरे शब्दों में, वृद्धि और विकास की प्रक्रिया में वंशानुक्रम जहाँ आधार का कार्य करता है, वहीं वातावरण इस आधार पर बनाए जाने वाले व्यक्तित्व सम्बन्धी भवन के लिए आवश्यक सामग्री एवं वातावरण जुटाने में सहयोग देता है। अतः वृद्धि और विकास प्रक्रियाओं के इन दोनों को समान महत्त्व दिया जाना आवश्यक हो जाता है।

मानव विकास की अवस्थाएँ (Stages of Human Development)

www.studyofeducation.com

मानव के सम्पूर्ण विकास काल को कई अवस्थाओं में विभाजित किया गया है। वैज्ञानिक अध्ययनों से ज्ञात होता है कि जन्म और परिपक्वता के बीच प्रत्येक अवस्था में कुछ ऐसी प्रमुख विशेषताएँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिनके कारण एक अवस्था दूसरी अवस्था से भिन्न दिखाई देने लगती है।

यद्यपि विकासात्मक अवस्थाओं को लेकर मनोवैज्ञानिकों के बीच मतभेद है तथापि मनोवैज्ञानिकों ने मानव विकास को निम्नलिखित अवस्थाओं में विभाजित किया है

शैशवकाल

- इसमें जन्म से 2 वर्ष तक बच्चों का शारीरिक एवं मानसिक विकास तेजी से होता है।
- बालक इस अवस्था में पूर्णरुप से माता-पिता पर आश्रित रहता है।
- इस अवस्था में संवेगात्मक विकास भी होता है तथा इस अवस्था में सीखने की क्षमता की गति तीव्र होती है।

- जब नवजात शिशु शैशवकाल (Infancy) की ओर अग्रसर होता है, तो उसके अन्दर प्यार व स्नेह की आवश्यकता बढ़ने लगती है।

बाल्यकाल (Childhood)

बाल्यकाल (Childhood) को निम्न दो भागों में विभाजित किया गया है -

पूर्व बाल्यकाल

- सामान्यत: 2 से 6 वर्ष की इस बाल्यकाल की अवस्था में बालकों का बाहरी जुड़ाव होने लगता है। बच्चों में (नकल करने की प्रवृत्ति) अनुकरण एवं दोहराने की प्रवृत्ति पाई जाती है।

- समाजीकरण एवं जिज्ञासा दोनों में वृद्धि होती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह काल भाषा सीखने की सर्वोत्तम अवस्था है।

उत्तर बाल्यकाल

- 6 से 12 वर्ष तक की इस बाल्यकाल की अवस्था में बच्चों में बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक, तर्कशीलता इत्यादि का व्यापक विकास होता है।

- पढ़ने की रुचि में वृद्धि के साथ-साथ स्मरण क्षमता का भी विकास होता । बच्चों में समूह भावना का विकास होता है अर्थात् समूह में खेलना, समूह में रहना, समलैंगिक व्यक्ति को ही मित्र बनाना इत्यादि। .

- जीवन में अनुशासन तथा नियमों की महत्ता समझ में आने लगती है। खोजी दृष्टिकोण एवं घूमने की प्रवृत्ति का विकास होता है।

किशोरावस्था

- 12 से 18 वर्ष के बीच की यह अवस्था अत्यन्त जटिल अवस्था होती है तथा साथ ही व्यक्ति के शारीरिक संरचना में परिवर्तन देखने को मिलता है।

- यह वह समय होता है, जिसमें बालक बाल्यावस्था से परिपक्वता की ओर उन्मुख होता है। इस अवस्था में किशोरों की लम्बाई एवं भार दोनों में वृद्धि होती है, साथ ही मांसपेशियों में भी वृद्धि होती है।

www.studyofeducation.com

- 12-14 वर्ष की आयु के बीच लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की लम्बाई एवं मांसपेशियों में तेजी से वृद्धि होती है एवं 14-18 वर्ष की आयु के बीच लड़कियों की अपेक्षा लड़कों की लम्बाई एवं मांसपेशियाँ तेजी से बढ़ती हैं। इस काल में प्रजनन अंग विकसित होने लगते हैं एवं उनकी काम की मूल प्रवृत्ति जाग्रत होती है।

- इस अवस्था में किशोर दुश्चिन्ता (दुविधा) एवं स्वयं से सम्बन्धित सरोकार (मतलब) का भाव रखते हैं। "मैं कौन हूँ' 'मैं क्या हूँ' 'मैं भी कुछ हूँ' जैसी प्रबल भावनाओं का विकास इस अवस्था में होने लगता है।

- इस अवस्था में किशोर-किशोरियों की बुद्धि का पूर्ण विकास हो जाता है, उनकी ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता बढ़ जाती है, स्मरण शक्ति बढ़ जाती है एवं उनमें स्थायित्व आने लगता है।

- इस अवस्था में मित्र बनाने की प्रवृत्ति तीव्र होती है एवं सामाजिक सम्बन्धों में वृद्धि होती है। इस अवस्था में नशा या अपराध की ओर उन्मुख होने की अधिक सम्भावना रहती है।

- किशोरावस्था के शारीरिक बदलावों का प्रभाव किशोर जीवन के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर पड़ता है। अत: इस अवस्था में उन्हें शिक्षकों, मित्रों एवं अभिभावकों के सही मार्गदर्शन एवं सलाह की आवश्यकता पड़ती है।

युवा प्रौढ़ावस्था

- यह सामान्यत: 18 से 40 वर्ष तक की अवस्था है।
- किशोरावस्था एवं युवा प्रौढ़ावस्था (Adulthood) की कोई निश्चित आयु नहीं होती। यह अवस्था मानव-विकास में एक निश्चित परिपक्वता ग्रहण करने से प्राप्त होती है।

परिपक्व प्रौढ़ावस्था

- यह सामान्यतः 40 से 65 वर्ष तक की अवस्था है।

- शारीरिक विकास में गिरावट आने लगती है अर्थात् बालों का सफेद होना, मांसपेशियों में ढीलापन तथा चेहरे पर झुर्रियाँ आना इत्यादि।

वृद्ध प्रौढ़ावस्था

www.studyofeducation.com

- यह 65 से अधिक वर्ष तक की अवस्था है।

- शारीरिक क्षमता का कमजोर होना। सामाजिक, आध्यात्मिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक क्रियाकलापों के प्रति रुझान।

(Phases of Growth and Development)

बालक के व्यक्तित्व का विकास निम्नलिखित आयामों के रूप में देखा जा सकता है

शारीरिक एवं गामक विकास

- शरीर के बाह्य परिवर्तन; जैसे-ऊँचाई, शारीरिक अनुपात में वृद्धि इत्यादि जिन्हें स्पष्ट रुप से देखा जा सकता है, किन्तु शरीर के आन्तरिक अवयवों के परिवर्तन बाह्य रुप से दिखाई तो नहीं पड़ते, किन्तु शरीर के भीतर इनका समुचित विकास होता रहता है। इसे निम्न तथ्यों के रुप में स्पष्ट किया जा सकता है -

- प्रारम्भ में शिशु अपने हर प्रकार के कार्यों के लिए दूसरों पर निर्भर रहता है, धीरे-धीरे विकास की प्रक्रिया के फलस्वरुप वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम होता जाता है।

- शारीरिक विकास पर बालक के आनुवंशिक गुणों का प्रभाव देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त बालक के परिवेश एवं उसकी देखभाल का भी उसके शारीरिक विकास पर प्रभाव पड़ता है।

- यदि बच्चे को पर्याप्त मात्रा में पोषक आहार उपलब्ध नहीं हो रहा है, तो उसके विकास की सामान्य गति की आशा कैसे की जा सकती है।

- बालक की वृद्धि एवं विकास के बारे में शिक्षकों को पर्याप्त जानकारी इसलिए भी रखना अनिवार्य है, क्योंकि बच्चों की रुचियाँ, इच्छाएँ, दृष्टिकोण एवं एक तरह से उसका पूर्ण व्यवहार शारीरिक वृद्धि एवं विकास पर ही निर्भर करता है।
- बच्चों की शारीरिक वृद्धि एवं विकास के सामान्य ढाँचे से परिचित होकर अध्यापक यह जान सकता है कि एक विशेष आयु स्तर पर बच्चों से क्या आशा की जा सकती है?

www.studyofeducation.com

मानसिक विकास

संज्ञानात्मक या मानसिक विकास (Cognitive or Mental Development) से तात्पर्य बालक की उन सभी मानसिक योग्यताओं एवं क्षमताओं में वृद्धि और विकास से है, जिनके परिणामस्वरुप विभिन्न प्रकार की समस्याओं को सुलझाने में अपनी मानसिक शक्तियों का पर्याप्त उपयोग कर पाता है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित क्रियाएँ देखी जा सकती हैं

- कल्पना करना, स्मरण करना, विचार करना, निरीक्षण करना, समस्या- समाधान करना, निर्णय लेना इत्यादि की योग्यता संज्ञानात्मक विकास के फलस्वरूप ही विकसित होते हैं।

- जन्म के समय बालक में इस प्रकार की योग्यता का अभाव होता है, धीरे-धीरे आयु बढ़ने के साथ-साथ उसमें मानसिक विकास की गति भी बढ़ती रहती है।

www.studyofeducation.com

सांवेगिक विकास

संवेग, जिसे भाव भी कहा जाता है का अर्थ होता है ऐसी अवस्था जो व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती है। भय, क्रोध, घृणा, आश्चर्य, स्नेह, खुशी इत्यादि संवेग के उदाहरण हैं। बालक में आयु बढ़ने के साथ ही इन संवेगों का विकास भी होता रहता है।

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित क्रियाएँ देखी जा सकती हैं

- संवेगात्मक विकास (Emotional Development) मानव वृद्धि एवं विकास का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है।

- बालक का संवेगात्मक व्यवहार उसकी शारीरिक वृद्धि एवं विकास को ही नहीं, बल्कि बौद्धिक, सामाजिक एवं नैतिक विकास को भी प्रभावित करता है। .

- बालक के सन्तुलित विकास में उसके संवेगात्मक विकास की मुख्य भूमिका होती है। बालक के संवेगात्मक विकास पर पारिवारिक वातावरण भी बहुत प्रभाव डालता है।

- विद्यालय के परिवेश और क्रिया-कलापों को उचित प्रकार से संगठित कर अध्यापक, बच्चों के संवेगात्मक विकास में भरपूर योगदान दे सकते हैं। .

क्रियात्मक विकास

क्रियात्मक विकास (Motor Development) का अर्थ होता है-व्यक्ति की कार्य करने की शक्तियों, क्षमताओं या योग्यताओं का विकास। क्रियात्मक शक्तियों, क्षमताओं या योग्यताओं का अर्थ होता है ऐसी शारीरिक गतिविधियाँ या क्रियाएँ जिनको सम्पन्न करने के लिए मांसपेशियों एवं तन्त्रिकाओं की गतिविधियों के संयोजन की आवश्यकता होती है; जैसे-चलना, बैठना इत्यादि।

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित क्रियाएँ देखी जा सकती हैं

- प्रारम्भ में एक नवजात शिशु किसी कार्य को करने में अक्षम होता है, किन्तु शारीरिक वृद्धि एवं विकास के साथ एवं उम्र बढ़ने के साथ उसमें क्रियात्मक विकास होने लगता है।
- इसके कारण बालक को आत्मविश्वास अर्जित करने में भी सहायता मिलती है। पर्याप्त क्रियात्मक विकास के अभाव में बालक में विभिन्न प्रकार के कौशलों के विकास में बाधा पहुँचती है।
- क्रियात्मक विकास के स्वरुप एवं उसकी प्रक्रिया का ज्ञान होना शिक्षकों के लिए आवश्यक है।
- इसी ज्ञान के आधार पर ही वह बालक में विभिन्न कौशलों का विकास करवाने में सहायक हो सकता है।
- जिन बालकों में क्रियात्मक विकास सामान्य से कम होता है, उनके समायोजन एवं विकास हेतु विशेष कार्य करने की आवश्यकता होती है।

www.studyofeducation.com

भाषायी विकास

भाषा के विकास को एक प्रकार से संज्ञानात्मक (भावनात्मक) विकास माना जाता है। चामॉस्की ने भाषा विकास का सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। इसके अनुसार बालक अपनी मातृभाषा के कुछ आधारभूत नियमों को या मूल व्याकरण को आत्मसात् करता हुआ भाषा विकास करता है।

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित क्रियाएँ देखी जा सकती हैं

- भाषा के माध्यम से बालक अपने मन के भावों, विचारों को एक-दूसरे के सामने रखता है एवं दूसरे के भावों, विचारों एवं भावनाओं को समझता है।

- भाषायी ज्ञान के अन्तर्गत बोलकर विचारों को प्रकट करना, संकेत के माध्यम से अपनी बात रखना तथा लिखकर अपनी बातों को रखना इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है।

- बालक 6 माह से 1 वर्ष के बीच कुछ शब्दों को समझने एवं बोलने लगता है।

- 3 वर्ष की अवस्था में वह कुछ छोटे वाक्यों को बोलने लगता है। 15 से 16 वर्षों के बीच काफी शब्दों की समझ विकसित हो जाती है।

- भाषायी विकास का क्रम एक क्रमिक विकास होता है। इसके माध्यम से कौशल में वृद्धि होती है।

सामाजिक विकास

सामाजिक विकास (Social Development) का शाब्दिक अर्थ होता है-समाज के अन्तर्गत रहकर विभिन्न पहलुओं को सीखना। समाज के अन्तर्गत ही चरित्र निर्माण, अच्छा व्यवहार (सद्गुण) तथा जीवन से सम्बन्धित व्यावहारिक शिक्षा इत्यादि का विकास होता है।

www.studyofeducation.com

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित क्रियाएँ देखी जा सकती हैं

- सामाजिक विकास सामान्यत: सामाजिक व्यवस्था के उद्देश्यों के अनुकूलन से सम्बन्धित है। .

- बालकों के विकास की प्रथम पाठशाला परिवार को माना गया है. तत्पश्चात् समाज को। सामाजिक विकास के माध्यम से बालको का जुड़ाव व्यापक हो जाता है।

- सम्बन्धों के दायरे में वृद्धि अर्थात् माता-पिता एवं भाई-बहन के अतिरिक्त दोस्तों/मित्रों से जुड़ना।

- सामाजिक विकास के माध्यम से बालकों में सांस्कृतिक, धार्मिक सामुदायिक विकास इत्यादि की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। बालकों के मन में आत्म-सम्मान, स्वाभिमान तथा विचारधारा का जन्म होता है।

- बालक, समाज के माध्यम से ही अपने आदर्श व्यक्तियों का चयन करता है तथा कुछ बनने की प्रेरणा उनसे लेता है।

- एक शिक्षित समाज में ही व्यक्ति का उत्तम विकास सम्भव हो सकता है।

संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ (Cognitive Processes)

शिक्षा मनोवैज्ञानिकों का मत है कि एक शिक्षक के लिए छात्रों के संज्ञानात्मक विकास को समझना अत्यन्त आवश्यक है। संज्ञान से तात्पर्य एक ऐसी प्रक्रिया से होता है जिसमें संवेदना, प्रतिमान, तर्कणा, प्रत्याहन, प्रत्यक्षण, चिन्तन, धारणा एवं समस्या समाधान जैसी मानसिक प्रक्रियाएँ सम्मिलित है। अतः संज्ञान से तात्पर्य संवेदी सूचनाओं को ग्रहण करके उनका रुपान्तरण, विस्तरण, संग्रहण, पुनर्लाभ तथा उसका समुचित प्रयोग करने से होता है।

इस प्रकार, संज्ञानात्मक विकास से तात्पर्य बालकों में किसी संवेदी सूचनाओं को ग्रहण कर उस पर चिन्तन करने तथा इस योग्य बना देने से है जिसका प्रयोग वे विभिन्न परिस्थितियों में करके विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सरलता से समाधान कर सकें।

अतः कहा जा सकता है कि संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं द्वारा होने वाला विकास बालक के बौद्धिक विकास से सम्बन्धित है। संज्ञानात्मक विकास के अध्ययन के क्षेत्र में जीन पियाजे का सिद्धान्त एक अभूतपूर्व सिद्धान्त माना गया है। उन्होंने बालकों के चिन्तन एवं तर्कणा के विकास के जैविक तथा संरचनात्मक तत्त्वों पर बल डालकर संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या की है।

संज्ञानात्मक विकास (Cognitive Development)

'संज्ञान' शब्द का अर्थ होता है 'जानना' या 'समझना'। यह एक ऐसी बौद्धिक प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत विचारों के द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाता है। संज्ञानात्मक विकास शब्द का प्रयोग मानसिक विकास के व्यापक अर्थ में किया जाता है, जिसमें बुद्धि के अतिरिक्त सूचना का प्रत्यक्षीकरण (Perception), पहचान, स्मरण तथा व्याख्या आता है। इस प्रकार संज्ञान में मानव की विभिन्न मानसिक गतिविधियों का समन्वय होता है। संज्ञानात्मक विकास इस बात पर बल देता है कि मनुष्य किस प्रकार तथ्यों को ग्रहण करता है और किस प्रकार उसका उत्तर देता है। जब हम 'शिक्षण' और 'सीखने की प्रक्रिया' में संज्ञानात्मक पक्ष पर जोर देते हैं, तो इसका अर्थ होता है कि हम तथ्यों और अवधारणाओं की समझ पर बल देते हैं।

जीन पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त

जीन पियाजे स्विट्जरलैण्ड के एक मनोवैज्ञानिक थे। बालकों में बुद्धि का विकास किस प्रकार से होता है, यह जानने के लिए उन्होंने अपने स्वयं के बच्चों को अपनी खोज का विषय बनाया। बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते गए, उनके मानसिक विकास सम्बन्धी क्रियाओं का वे बड़ी गहनता से अध्ययन करते रहे। इस अध्ययन के परिणामस्वरुप उन्होंने जिन विचारों का प्रतिपादन किया, उन्हें पियाजे के मानसिक या संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है।

संज्ञानात्मक विकास का तात्पर्य बच्चों के सीखने और सूचनाएँ एकत्रित करने के तरीके से है। इसमें अवधान में वृद्धि, प्रत्यक्षीकरण, भाषा, चिन्तन, स्मरण शक्ति और तर्क शामिल हैं।

www.studyofeducation.com

पियाजे के संज्ञानात्मक सिद्धान्त के अनुसार, "वह प्रक्रिया जिसके द्वारा संज्ञानात्मक संरचना को संशोधित किया जाता है, समावेशन कहलाती है।" पियाजे ने अपने इस सिद्धान्त के अन्तर्गत यह बात सामने रखी कि बच्चों में बुद्धि का विकास उनके जन्म के साथ जुड़ा हुआ है। प्रत्येक बालक अपने जन्म के समय कुछ जन्मजात प्रवृत्तियों एवं सहज क्रियाओं को करने सम्बन्धी योग्यताओं; जैसे- चूसना, देखना, वस्तुओं को पकड़ना, वस्तुओं तक पहुँचना आदि को लेकर पैदा होता है।

अतः जन्म उन समय बालक के पास बौद्धिक संरचना के रुप में इसी प्रकार की क्रियाओं को करने की क्षमता होती है, परन्तु जैसे-जैसे वह बड़ा होता है, बौद्धिक क्रियाओं का क्षेत्र बढ़ जाता है और वह बुद्धिमान बनता चला जाता है। बच्चों में दुनिया के में समझ विकसित करने की क्षमता पैदा हो जाती है।

वातावरण के अनुसार स्वयं को ढालना अनुकूलन कहलाता है। बच्चों में वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने की बेहतर क्षमता होती है। पूर्व ज्ञान के साथ नवीन ज्ञान को जोड़ने की प्रक्रिया को आत्मसातीकरण (Assimilation) कहते हैं। जब बालक अपने पुराने स्कीमा अर्थात् ज्ञान में परिवर्तन करना प्रारम्भ कर देता है, तो वह प्रक्रिया समायोजन (Adjustment) कहलाती है।

www.studyofeducation.com

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के अनुसार, हमारे विचार और तर्क अनुकूलन के भाग हैं। संज्ञानात्मक विकास एक निश्चित अवस्थाओं के क्रम में होता है। संवेदी प्रेरक अवस्था अनुकरण (Imitation), स्मृति (Memory) एवं मानसिक निरुपण पर आधारित होती है।

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएँ

पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास को चार अवस्थाओं में विभाजित किया है, जिनके नाम एवं विशेषताएँ इस प्रकार हैं

इन्द्रियजनित गामक अवस्था (जन्म से 2 वर्ष तक)

- मानसिक क्रियाएँ इन्द्रियजनित गामक क्रियाओं के रुप में ही सम्पन्न होती हैं।
- भूख लगने की स्थिति को बालक रोकर व्यक्त करता है। इस अवस्था में व्यक्ति आँख, कान एवं नाक से सोचता है। जिन वस्तुओं को वे प्रत्यक्षतः देखते हैं, उनके लिए उसी का अस्तित्व होता है। .
- इस आयु में बालक की बुद्धि, उसके कार्यों द्वारा व्यक्त होती है। उदाहरण के लिए, चादर पर बैठा शिशु चादर पर थोड़ी दूर स्थित खिलौने को प्राप्त करने के लिए चादर को खींचकर खिलौना प्राप्त कर लेता है।

- इस तरह यह अवस्था अनुकरण, स्मृति और मानसिक निरुपण से सम्बन्धित है।

पूर्व संक्रियात्मक अवस्था (2 से 7 वर्ष तक)

- इस अवस्था में बालक अपने परिवेश की वस्तुओं को पहचानने एवं उसमें विभेद करने लगता है। इस दौरान उसमें भाषा का विकास भी प्रारम्भ हो जाता है।

- इस अवस्था में बालक नई सूचनाओं और अनुभवों का संग्रह करता है। वह पहली अवस्था अपेक्षा अधिक समस्याओं का समाधान करने योग्य हो जाता है। बच्चों वस्तु स्थायित्व के गुण का विकास होता है।

मूर्त संक्रियात्मक अवस्था (7 से 11 वर्ष तक)

- इस अवस्था में बालक में वस्तुओं को पहचानने, उनका विभेदीकरण (Differentiation) करने तथा वर्गीकरण (Classification) करने की क्षमता विकसित हो जाती है।

- उनका चिन्तन अब अधिक क्रमबद्ध एवं तर्कसंगत होना प्रारम्भ कर देता है। इस अवस्था में बालक विश्वास करने लगता है तथा लम्बाई, भार, अंक आदि प्रत्ययों पर चिन्तन करता है।

- भाषा का पूर्ण विकास, बालक में किसी सामान्य विषय के सम्बन्ध में तर्क या जिद्द करने की प्रवृत्ति आदि बालक सीख लेता है।

- बालक अपने पर्यावरण के साथ अनुकूलन (Adaptation) करने के लिए अनेक नियमों को सीख लेता है।

औपचारिक या अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था (11 वर्ष से आगे)

यह अवस्था ग्यारह वर्ष से प्रौढ़ावस्था तक की अवस्था है। अमूर्त चिन्तन इस अवस्था की प्रमुख विशेषता है।

- इस अवस्था में भाषा सम्बन्धी योग्यता तथा सम्प्रेषणशीलता (Communication) का विकास अपनी ऊँचाई को छूने लगता है।

- इस अवस्था में व्यक्ति अनेक संक्रियात्मक को संगठित कर उच्च स्तर के संक्रियात्मक का निर्माण कर सकता है और विभिन्न प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए अमूर्त नियमों का निर्माण कर सकता है।

www.studyofeducation.com

- बालक में अच्छी तरह से सोचने, समस्या समाधान करने एवं निर्णय लेने की क्षमता का विकास हो जाता है।

जीन पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का शैक्षिक महत्त्व

- पियाजे के अनुसार, संज्ञानात्मक या मानसिक विकास निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।
- बालकों का मानसिक विकास धीरे-धीरे एक सोपान (क्रम) के अनुसार होता रहता है। अध्यापकों को पहले बालकों के मानसिक विकास की अवस्था का निर्धारण कर, उसे शिक्षित करने हेतु योजना बनानी चाहिए। तार्किक चिन्तन के विकास में बाल्यावस्था महत्त्वपूर्ण कड़ी मानी जाती है। अत: शिक्षकों को बच्चों में तार्किक क्षमता बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए।
- वर्ग में समान रुचि के विद्यार्थियों को छोटे-छोटे समूहों में विभाजित कर उनमें विचार-विनिमय (Exchange of Thoughts) के माध्यम से तार्किक बुद्धि के विकास के अवसर देने चाहिए। बच्चों को गलती करने एवं उसे स्वयं सुधारने का पर्याप्त अवसर देना चाहिए। .
- शिक्षकों को प्रयोगात्मक शिक्षा एवं व्यावहारिक शिक्षा पर बल देना चाहिए। प्रयोगों के माध्यमों से बालकों में नवीन विचार का संचार होता है। नवीन दृष्टिकोण, मौलिक अन्वेषण के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण होता है।
- शिक्षक को वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन करते रहना चाहिए। यह प्रतियोगिता नवीन सोच एवं नवीन विचारों को जन्म देती है। .

जीन पियाजे द्वारा दिए गए कुछ अन्य सिद्धान्त निम्न हैं

निर्माण और खोज का सिद्धान्त

- प्रत्येक बालक अपने अनुभवों को अर्थपूर्ण बनाने के लिए क्रियाशील होता है। वह यह जानने के लिए प्रयत्नशील होता है कि उसके विचार सम्बद्धतापूर्वक मेल खाते हैं या नहीं।
- बच्चे उन व्यवहारों और विचारों की समय-समय पर खोज और निर्माण करते हैं, जिन व्यवहारों और विचारों का उन्होंने कभी पहले प्रत्यक्षण नहीं किया होता है।

www.studyofeducation.com

- पियाजे का विचार है कि ज्ञानात्मक विकास केवल नकल न होकर खोज पर आधारित है। नवीनता या खोज को उद्दीपक-अनुक्रिया सामान्यीकरण के आधार पर नहीं समझाया जा सकता। उदाहरण के लिए, एक चार साल का बालक यदि भिन्न-भिन्न आकार के प्यालों को प्रथम बार क्रमानुसार लगा देता है, तो यह उसकी बौद्धिक वृद्धि की खोज और निर्माण से सम्बन्धित है।

कार्य-क्रिया का अर्जन

- कार्यात्मक क्रिया का तात्पर्य उस विशिष्ट प्रकार की मानसिक दिनचर्या से है, जिसकी मुख्य विशेषता उत्क्रमणशीलता है।

- प्रत्येक कार्यात्मक-क्रिया का एक तर्कपूर्ण विपरीत प्रभाव होता है। उदाहरण के लिए, एक मिट्टी के चक्र को दो भागों में तोड़ना तथा दो टूटे हुए भागों को पुन: एक पूर्ण चक्र के रुप में जोड़ना एक कार्यात्मक-क्रिया है।

- कार्यात्मक-क्रिया की सहायता से बच्चे मानसिक रुप से वहाँ पुन: पहुँच सकते हैं, जहाँ से उन्होंने कार्य प्रारम्भ किया था।

- बौद्धिक वृद्धि का केन्द्र इन्हीं कार्यात्मक-क्रिया का अर्जन है।

- पियाजे का विचार है कि जब तक बालक किशोरावस्था तक नहीं पहुँच जाता है, तब तक वह भिन्न-भिन्न विकास अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न वर्गों की कार्यात्मक-क्रिया का अर्जन करता रहता है।

- एक विकास अवस्था से दूसरी में पदार्पण (प्रारम्भ) के लिए दो तथ्य आत्मीकरण एवं सन्तुलन स्थापित करना आवश्यक है।

- आत्मीकरण का अर्थ है-बालक में उपस्थित एक विचार में किसी नए विचार या वस्तु का समावेश हो जाना। पियाजे के अनुसार, आत्मीकरण बालक के प्रत्यक्षात्मक-गत्यात्मक समन्वय से सम्बन्धित है।

- व्यवस्थापन या सन्तुलन का अर्थ है नई वस्तु या विचार के साथ समायोजन करना या अपने विचारों और क्रियाओं को नए विचारों और वस्तुओं में फिट करना।

www.studyoreducation.com

व्यक्तित्व (Personality)

हम जो कुछ हैं और जो कुछ बनना चाहते हैं, वह सब कुछ हमारे व्यक्तित्व के अन्तर्गत आता है। मानव जीवन का प्रत्येक तत्त्व व्यक्तित्व में ही सम्मिलित होता है। व्यक्तित्व हमारे व्यवहार को प्रभावित करता है तथा यह हमारे व्यवहार का दर्पण होता है।

व्यक्तित्व व्यक्ति का शारीरिक, बौद्धिक, भावात्मक, सामाजिक और चरित्रात्मक विशेषताओं का समूह है जो उसके व्यवहार, अनुभवों, आदतों, दृष्टिकोणों, विश्वासों, रुचियों तथा भावनाओं आदि विशेषताओं द्वारा प्रकट होता है।

व्यक्तित्व का अर्थ एवं परिभाषाएँ

व्यक्तित्व का अंग्रेजी अनुवाद 'Personality' है, जो लैटिन शब्द परसोना (Persona) से बना है तथा जिसका अर्थ नकाब होता है और जिसे नायक नाटक में अभिनय करते समय पहनते हैं। अत: व्यक्ति के लक्षणों को चरित्र या व्यक्तित्व कहा जाता है।

www.studyofeducation.com

जिस कारण प्राचीन समय में व्यक्तित्व से अभिप्राय व्यक्ति की वेशभूषा, कपड़े पहनने का तरीका, बाल बनाने का तरीका अर्थात् व्यक्ति की बाहरी विशेषताओं से लिया जाता था। यह व्यक्तित्व का संकुचित अर्थ है, परन्तु वर्तमान समय में मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व में आन्तरिक पक्ष एवं व्यवहार को अधिक महत्त्व दिया है।

व्यक्तित्व के अर्थ को निम्नलिखित परिभाषाओं द्वारा समझा जा सकता है

आलपोर्ट (1937) के अनुसार, "व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोशारीरिक तन्त्रों का गतिशील या गत्यात्मक संगठन है, जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन को निर्धारित करते हैं।'

आलपोर्ट की इस परिभाषा में व्यक्तित्व के भीतरी गुणों तथा बाहरी गुण अर्थात् व्यवहार दोनों को सम्मिलित किया गया है, परन्तु उन्होंने व्यक्तित्व के भीतरी गुणों पर तुलनात्मक रूप से अधिक बल दिया है।

गिलफोर्ड के अनुसार, "व्यक्तिगत विभिन्नताएँ ही व्यक्तित्व का पता करने की तार्किक कुंजी हैं। अतः किसी व्यक्ति के शीलगुणों के अपूर्व प्रतिरुप को व्यक्तित्व कहते हैं।"

शरमैन के अनुसार, "व्यक्ति का विशिष्ट व्यवहार ही उसका व्यक्तित्व हैं।

मार्कविस एवं वुडवर्थ के अनुसार, "व्यक्तित्व व्यक्ति के व्यवहार की वह व्यापक विशेषता है जो उसके विचारों और उनके प्रकट करने के ढंग, उसकी मनोवृत्ति और रुचि, कार्य करने के उसके ढंग और जीवन, उसके व्यक्तिगत दार्शनिक दृष्टिकोण से प्रकट होती है।" "

www.studyofeducation.com

व्यक्तित्व के निर्धारक तत्त्व

व्यक्तित्व के प्रमुख निर्धारक तत्त्व निम्नलिखित हैं

जैविक तथा समाज-सांस्कृतिक

व्यक्तित्व के कुछ निर्धारकों का सर्वाधिक प्रभाव उसके केन्द्रीय प्रतिमान स्व-प्रत्यय और केन्द्र से सम्बद्ध कुछ लक्षणों पर पड़ता है। कोई भी निर्धारक व्यक्तित्व प्रतिमान के एक भाग को प्रभावित नहीं करता। उदाहरण के लिए, एक शारीरिक दोष बालक के जीवन में समायोजन प्रतिमान को ही नहीं वरन् व्यक्तित्व के केन्द्रीय प्रतिमान तथा बालक के स्व-प्रत्यय को भी प्रभावित करता है। बालक के स्व-प्रत्यय को अनेक कारक प्रभावित करते हैं, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप में बालक के समायोजन प्रतिमान को प्रभावित करते हैं। इन कारकों में परिवार में व्यक्तिगत समस्याएँ, वय-समूह के मत, पैतृक, प्रत्याशाएँ, परिवार के सदस्यों के प्रति अभिवृत्तियाँ, बालक की शारीरिक दशा, जैविक परिपक्वता, टेलीविजन तथा रेडियो के भाव, धार्मिक सम्बद्धता, स्कूल की माँगें, स्कूल के अवसर आदि हैं। ये सभी स्व-प्रत्यय से सम्बद्ध होने के नाते किसी-न-किसी रुप में व्यक्तित्व का निर्धारण करने में योगदान करते हैं।

सांस्कृतिक एवं सामाजिक प्रभाव

माना जाता है कि हम बच्चों को उनकी संस्कृति से अलग ले जा सकते हैं, किन्तु बालकों से संस्कृति को अलग नहीं कर सकते। बालकों पर संस्कृति द्वारा स्थापित मानदण्डों के अनुभव व्यक्तित्व प्रतिमान विकसित करने के लिए पर्याप्त दबाव डालते हैं। बालकों के माता-पिता के सांस्कृतिक समूह अनुमोदित व्यक्तित्व प्रतिमानों के विकास के लिए मॉडल प्रस्तुत करते हैं। घर तथा स्कूल में प्राप्त प्रशिक्षण के द्वारा बालकों की संस्कृति द्वारा प्रस्तुत मॉडल के अनुरुप व्यक्तित्व प्रतिमान विकसित करने की प्रत्याशा की जाती है। इस प्रकार, बालकों के व्यक्तित्व प्रतिमानों का विकास बहुत कुछ उनके पालन-पोषण पर निर्भर करता है। जैसे-जैसे वे बड़े होते हैं, उन पर वय-समूह का प्रभाव बढ़ता है। इसी तरह घर के बाहर प्रौढ़ सामाजिक समूह का प्रभाव भी बढ़ता है जो घर तथा स्कूल के प्रभावों का पूरक होता है। इन सब प्रभावों के चलते बालक संस्कृति के सन्दर्भ में समाज द्वारा अनुमोदित व्यवहार सीखते हैं।

इन्सेलबर्ग तथा बर्क के अनुसार, किसी सांस्कृतिक समूह में, जो बालकों पर सांस्कृतिक प्रत्याशाओं के अनुरुप बनने के लिए प्रबल दबाव डालता है, अनुरूपता की मात्रा उनके स्व-प्रत्यय को प्रभावित करती है। अनेक संस्कृतियों में बच्चों को इस तरह से प्रशिक्षित करते हैं जिससे बच्चे परिवारोन्मुख हो जाते हैं। परिणामस्वरुप उनमें ऐसे व्यक्तित्व प्रतिमान; जैसे-भक्ति, सहयोग, आत्मबलिदान और प्रायः अपने तथा अपनी भूमिकाओं के विषय में यथार्थपरक प्रत्यय विकसित होते हैं। व्यक्ति-उन्मुख संस्कृतियों जैसे कि वर्तमान अमेरिकी संस्कृति में बालक अधिक आत्मकेन्द्रित, अपने अधिकारों और स्वतन्त्रता के विषय में अधिक जागरुक तथा दूसरों की अपेक्षा स्वयं अपनी सहायता करने के लिए अधिक चिन्तित अथवा स्वार्थी हो जाते हैं।

www.studyofeducation.com

भाविक दशा

शारीरिक दशा के दो पक्ष बालकों के व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं-सामान्य स्वास्थ्य और शारीरिक दोष। अच्छा स्वास्थ्य न केवल सामान्य क्रियाओं के सम्पादन के लिए आवश्यक होता है वरन् उनके व्यक्तित्व पर भी इसका अनुकूल प्रभाव पड़ता है। अस्वस्थ की अपेक्षा स्वस्थ बालकों के प्रति परिवार और सामाजिक समूह का व्यवहार अधिक अनुकूल होता है, जो निश्चित ही उनके स्व-प्रत्यय को प्रभावित करता है। अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ व्यक्ति की भाविक दशा को विशेषकर प्रभावित करती हैं, साथ ही शारीरिक स्वास्थ्य का प्रभाव भी भावात्मक दशा पर पड़ता है, जिसे आप निम्न प्रकार देख सकते हैं

- **चिरस्थायी रोग** चिरस्थायी रोग; जैसे-एलर्जी और मधुमेह आदि के कारण सांवेगिक अस्थिरता, प्रबल ऋणात्मक संवेग और परिवार के सदस्यों पर सांवेगिक निर्भरता देखी जाती है।

- **अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ** अन्तःस्रावी ग्रन्थियों में व्यक्तित्व पर थायरॉयड का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। थायरॉयड की अतिक्रियाशीलता से बालक स्नायविक, उत्तेजित, बेचैन तथा अति सक्रिय हो जाते हैं, जबकि इस ग्रन्थि की क्रियाशीलता में मन्दता के कारण सुस्त, असंवेदनशील, अवसादी, असन्तुष्ट और अविश्वसनीय हो जाते हैं। शारीरिक दोष व्यक्तित्व को

दो रुपों में प्रभावित करता है-बालकों द्वारा की जाने वाली क्रियाओं और इन दोषों के कारण दूसरों के बालक के प्रति अभिवृत्तियाँ। शारीरिक दोष जितना अधिक होता है, बालक अन्य बालकों से उतना ही भिन्न हो जाता है।

शरीर गठन

शरीर गठन प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों तरह से व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। प्रत्यक्ष रुप से यह निर्धारित करता है कि बच्चे क्या कर सकते हैं और क्या नहीं कर सकते? अप्रत्यक्ष रुप में यह निर्धारित करते हैं कि बच्चे अपने शरीर के बारे में क्या अनुभव करते हैं? उदाहरण के लिए, जो बच्चे पर्याप्त मोटे होते हैं, उस समय तक अपने मोटापे के प्रति सचेत नहीं होते, जब तक उन्हें यह जानकारी नहीं होती कि मोटापे को अन्य व्यक्ति कुरुपता का लक्षण मानते हैं। इनका प्रभाव बालक के स्व-प्रत्यय पर पड़ता है।

व्यक्तित्व के सिद्धान्त

- व्यक्तित्व से अर्थ व्यक्ति के उन सभी शीलगुणों (Traits), प्रवृत्तियों या विशेषताओं से होता है जिनसे व्यक्ति के व्यवहार में संगति आती है। व्यक्तित्व की संरचना (Structure) एवं गतिकी (Dynamic) की व्याख्या करने के लिए व्यक्तित्व के कई सिद्धान्त विकसित किए गए हैं, जिनका वर्णन करने से पहले उनके स्वरुप (Nature) पर ध्यान देना आवश्यक है।

- व्यक्तित्व सिद्धान्त (Personality Theory) से तात्पर्य सम्बन्धित पूर्वकल्पनाओं (Related Assumptions) के एक ऐसे समूह से है, जिनसे तार्किक निगमनात्मक विवेचन (Logical Deductive Reasoning) द्वारा जाँचनीय प्राक्कल्पना (Testable Hypothesis) बनाया जा सकता है तथा जिनसे प्रेक्षणों (Observations) को एक संगठित रुप मिलता है, शोध की उत्पत्ति होती है, व्यवहारों का मार्गदर्शन होता है एवं मानव व्यवहार में संगति (Consistency) की व्याख्या होती है।

- यदि वास्तव में मानव व्यवहार को पूर्णतः समझ लिया जाता, तो वैसी हालत में व्यक्तित्व सिद्धान्त की जरुरत नहीं होती, परन्तु सच्चाई ऐसी नहीं है और व्यक्तित्व सिद्धान्तों में हमें यह पता चलता है कि लोग क्यों किसी खास तरह से व्यवहार करते हैं। इसके पीछे क्या कारण हो सकता है? अतः व्यक्तित्व के प्रमुख सिद्धान्तों का उल्लेख इस प्रकार है

मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त

व्यक्तित्व का अध्ययन करने का सबसे प्रथम सिद्धान्त मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त है, जिसका प्रतिपादन सिग्मण्ड फ्रॉयड द्वारा किया गया। अपने इस सिद्धान्त में इन्होंने मानव मस्तिष्क की तुलना जल में डूबी हुई बर्फ की चट्टान से की है, जिसका अधिकांश भाग जल में डूबा है तथा मानव प्रकृति की निराशावादी तथा निश्चयवादी छवि पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। व्यक्तित्व की

www.studyofeducation.com

व्याख्या करने के लिए अचेतन की इच्छाओं, यौन एवं आक्रामकता के जैविक आधारों, आरम्भिक बाल्यावस्था के मानसिक संघर्षों को महत्त्वपूर्ण समझा गया है और इन्हें व्यक्तित्व का प्रमुख निर्धारक माना गया है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत हम सिग्मण्ड फ्रॉयड द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त की व्याख्या का वर्णन प्रस्तुत करेंगे।

फ्रॉयड ने व्यक्तित्व की संरचना को तीन स्तरों में बाँटा है -

1. **चेतन** इसका तात्पर्य मन के ऐसे भाग से होता है जिसमें वे सभी अनुभूतियाँ एवं संवेदनाएँ होती हैं जिनका सम्बन्ध वर्तमान से होता है। किसी भी क्षण व्यक्ति के मन में आ रही अनुभूतियों का सम्बन्ध उसके चेतन से ही होता है।

2. **अर्द्धचेतन** इससे तात्पर्य वैसे मानसिक स्तर से होता है जो वास्तव में न तो पूर्णतः चेतन होता है और न ही पूर्णत: अचेतन। इसमें वैसी इच्छाएँ, विचार, भाव आदि होते हैं, जो हमारे वर्तमान चेतन या अनुभव में नहीं होते हैं, परन्तु प्रयास करने पर वे हमारे चेतन मन में आ जाते हैं। उदाहरण यदि हम अलमारी में अमुक किताब को नहीं पाते हैं और थोड़ा सोचने पर याद आता है कि उस किताब को तो हमने अपने मित्र को दे दिया था।

3. **अचेतन** हमारे कुछ अनुभव इस प्रकार के होते हैं, जो न तो हमारी चेतना में होते हैं और न ही अर्द्धचेतन में, ऐसे अनुभव अचेतन में होते हैं। अचेतन मन में रहने वाले विचार एवं इच्छाओं का स्वरुप कामुक, असामाजिक, अनैतिक तथा घृणित होता है।

मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त का अनुप्रयोग

सिग्मण्ड फ्रॉयड एक ऐसे व्यक्ति हुए हैं, जिन्होंने अपना अधिकतर समय मानसिक रोगियों की चिकित्सा में व्यतीत किया है। इनका उद्देश्य केवल रोगियों की चिकित्सा करना ही नहीं था, वरन् मानव व्यक्तित्व को समझने में अपनी समझ विकसित करना था।

प्रमुख अनुप्रयोग है नैदानिक दृष्टिकोण (Clinical Viewpoint) से फ्रॉयड द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त (Psychoanalytic Theory) के तीन

स्वप्न विश्लेषण (Dream Analysis) फ्रॉयड के अनुसार, करीब-करीब सभी स्वप्न इच्छापूरक (Wishfulfiller) होते हैं क्योंकि स्वप्न में व्यक्ति अपने अचेतन की इच्छाओं की पूर्ति होते पाता है। ऐसी अचेतन की इच्छाएँ प्राय: बाल्यावस्था की होती हैं, परन्तु कभी-कभी ऐसी इच्छाओं का सम्बन्ध हाल की गत अनुभूतियों से भी होता है।

स्वप्न प्रक्रम के कई प्रकार हैं, जिनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रकार संक्षेपण एवं विस्थापन है।

www.studyofeducation.com

पाराप्रेक्सेज (Parapraxes) पाराप्रेक्सेज एक ऐसा सामान्य पद है जिसका प्रयोग फ्रॉयड ने उन भूलों या मनोविकृतियों (Psychopathologies) के लिए किया है, जिसे व्यक्ति अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन में प्राय: करता है। इन भूलों में बोलने की भूल (Slip of tongue), लिखने की भूल (Slip of pen), पहचाने की भूल, छपाई की भूलें प्रमुख हैं। सामान्य व्यक्तियों के लिए पाराप्रेक्सेज का कोई अर्थ नहीं होता है, परन्तु फ्रॉयड ने यह स्पष्ट किया कि वे अर्थहीन नहीं होते हैं और उनसे व्यक्ति की अचेतन की इच्छाओं का पता चलता है, परन्तु इनमें से अचेतन की इच्छाएँ तुलनात्मक रूप से अधिक प्रबल (Dominent) होती हैं। वास्तव में अचेतन की इच्छाएँ अपनी प्रबलता के कारण अर्द्धचेतन की इच्छाओं का स्थान ग्रहण कर लेती हैं। अत: पाराप्रेक्सेज के अध्ययन से भी फ्रॉयड यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि दिन-प्रतिदिन का मानव व्यवहार जो ऊपर से अर्थहीन लगता है, वास्तव में अर्थहीन नहीं होता है और उनसे भी व्यक्ति के अचेतन को समझने में काफी सहायता मिलती है।

मनोचिकित्सा (Psychotherapy) फ्रॉयडियन चिकित्सा, जिसे मनोवैश्लेषिक चिकित्सा (Psychoanalytic Therapy) भी कहा जाता है, का उद्देश्य अचेतन की इच्छाओं को चेतन में लाकर उसके अर्थ एवं महत्त्व को समझना, रोगी के **अहम्** (Ego) को मजबूत करना तथा उसके अहम् को **पराहम्** (Superego) के प्रभाव से मुक्त करना तथा व्यक्ति के प्रत्यक्षण (Perception) को वास्तविक (Realistic) बनाना है। फ्रॉयड ने रोगी के अचेतन की इच्छाओं को चेतन में लाने के लिए दो प्रविधियों (Techniques) का प्रयोग किया है-स्वतन्त्र साहचर्य (Free association) तथा स्वप्न विश्लेषण (Dream Analysis)। स्वतन्त्र साहचर्य (Free Association) में रोगी के किसी चेतन विचार (Conscious Idea) को प्रारम्भ बिन्दु मानकर उस पर उसे स्वतन्त्र साहचर्य की प्रक्रिया आसान नहीं है और कई रोगी इसे सही अर्थ में करने में असफल हो जाते हैं। फलत: फ्रायड ने ऐसे रोगियों के लिए स्वप्न विश्लेषण (Dream Analysis) पर बल डाला है। यहाँ रोगी अपने स्वप्नों को उपचार के दौरान बताते हैं। .

व्यावहारिक सिद्धान्त

इस उपागम द्वारा व्यक्तित्व अध्ययन में इस बात पर बल दिया जाता है कि व्यक्ति किन तरीकों अथवा किन माध्यमों से अपने पर्यावरण तथा अपने आप को जानता है, वह उनका किस तरह से मूल्यांकन करता है, सीखता है, सोचता है, निर्णय लेता है तथा समस्या का समाधान करता है। वास्तव में, संज्ञानात्मक उपागम व्यक्तित्व अध्ययन का सबसे तर्कसंगत या मनोवैज्ञानिक उपागम है, क्योंकि इसमें केवल चेतन मानसिक क्रियाओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है, यद्यपि यह सत्य है कि व्यक्तित्व अध्ययन के अन्य सिद्धान्तों में भी संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का उपयोग किया जाता है, परन्तु इस सिद्धान्त में सम्पूर्ण व्यक्तित्व को ही न कि उसके किसी अंश भाग को उसके संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के रूप में समझने की कोशिश की जाती है।

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत हम केली द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त तथा Kurt लेविन द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के सिद्धान्त का वर्णन करते हैं।

फ्रॉयड ने मानव मन की संरचना एवं व्यक्तिगत व्यवहार की क्रियाओं के निरूपण हेतु इड (Id), ईगो (Ego) तथा सुपर ईगो (Super Ego) की धारणाओं को हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

www.studyofeducation.com

हिन्दी रुपान्तरण में इन्हें इदम्, अहम् तथा पराहम् कहा जाता है। इनका विवरण निम्नलिखित है

- **इड (Id)** मानव मन के इस पक्ष में व्यक्ति के व्यवहार एवं व्यक्तित्व से सम्बन्धित पाशविक प्रवृत्तियों एवं अनैतिक भावनाओं का संग्रह होता है। इसी के माध्यम से मानव इन्द्रियजनित सुखों की खोज करता है तथा अपनी इच्छाओं की तृप्ति के लिए वह किसी भी नियम अथवा रीति-रिवाज का उल्लंघन कर सकता है।

- **ईगो (Ego)** इड के असामाजिक व नियम विरुद्ध कार्यों को रोकने के लिए ईगो अर्थात् अन्तःकरण संरक्षक (पहरेदार) का कार्य करता है। वह व्यक्ति द्वारा 'क्या किया जाना चाहिए, क्या नहीं' का निर्धारण करता है तथा अवांछनीय इच्छाओं का दमन करता है। इस प्रकार ईगो मानव की विवेचना शक्ति है जो वास्तविकता की सतह पर कार्य करती है। मनुष्य की किन इच्छाओं को कैसे और कितना सन्तुष्ट होना चाहिए यह इसके द्वारा निर्धारित होता है।

- **सुपर ईगो (Super Ego)** यह व्यक्तित्व के आदर्श और नैतिक स्वरुप का प्रतिनिधित्व करता है। इसके अन्तर्गत वास्तविकता की उपेक्षा कर आदर्शों पर अधिक बल दिया जाता है। सुख एवं आनन्द की प्राप्ति के स्थान पर नैतिक एवं आदर्शों की प्राप्ति ही इसका प्रमुख उद्देश्य है। क्या पुण्य है, क्या पाप, क्या अच्छा है, क्या बुरा। इन सबका ध्यान रखते हुए सामाजिक मान्यताओं के आधार पर व्यक्तित्व के इसी पक्ष द्वारा निर्णय किया जाता है। सन्तुलित व्यक्ति एवं व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए व्यक्तित्व के इन तीनों पक्षों का सम्मिलित रुप से क्रियान्वयन होना चाहिए।

www.studyofeducation.com

फ्रॉयड का नव-विश्लेषणात्मक सिद्धान्त

नव-विश्लेषणात्मक सिद्धान्त के प्रतिपादन में हॉर्नें, फ्रॉम एवं सुलिवान का योगदान विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं। ये नव-फ्रॉयडवादी के नाम से जाने जाते हैं। इन्हें नव-फ्रॉयडवादी मनोवैज्ञानिक इसलिए कहते हैं कि इनके और फ्रॉयड के विचारों में बहुत कुछ समानताएँ हैं, लेकिन, फ्रॉयड के कुछ विचारों को इन्होंने नहीं माना है और उनकी जगह अपने अलग विचार प्रस्तुत किए हैं।

इस समूह के मनोवैज्ञानिकों के विचारों का विवरण निम्नलिखित है

कैरेन हॉर्नें जर्मनी की रहने वाली थीं। इन्होंने फ्रॉयड के अचेतन और दमन के महत्त्व को तो स्वीकार किया, लेकिन यौन प्रेरणा को उतना महत्त्वपूर्ण नहीं समझा। हॉर्नें ने इसके अतिरिक्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरणों को भी महत्त्वपूर्ण बताया है। हॉर्नें के विचारों में किसी व्यक्ति को सामान्य व्यक्ति तब कहा जाएगा, जब उसका व्यवहार सांस्कृतिक आदर्शों और मूल्यों के अनुरुप होता है। इस प्रकार, इन विचारों से विपरीत व्यवहार को ही एक सामान्य व्यक्ति कहा जाएगा। हॉर्नें का एक विचार यह भी है कि जिस समाज में आदर्श तथा मूल्य बहुत अधिक जटिल और दृढ़ बनाए जाते हैं, वहाँ पर अभियोजन योग्य व्यवहारों को सीखना अपेक्षाकृत कठिन होता है।

उदाहरणार्थ जिस समाज में बालकों के पारस्परिक द्वन्द्व या द्वेष की भावना प्रकट करने पर प्रतिबन्ध रहता है अथवा सदैव परिवार के बड़े सदस्यों के कथनानुसार ही विभिन्न प्रकार के क्रियाकलापों को करने का प्रशिक्षण दिया जाता है, उस समाज के बालकों की मूल प्रवृत्तियाँ कुण्ठित हो जाती हैं, जो कभी भी मन: स्नायुरोग के रूप में प्रकट हो सकती हैं। एक स्वस्थ व्यक्ति में उपाहं, अहं तथा पराहं पूरी तरह से संगठित होता है तथा इस ढंग से कार्य करता है कि इसमें निरन्तर संघर्ष होता है।

फ्रॉयड के अनुसार, शारीरिक ऊर्जा तथा मानसिक ऊर्जा दोनों का स्पर्श बिन्दु उपाहं होता है, जिस व्यक्ति में सत्व गुण प्रधान होता है, वह प्रखर बुद्धि का होता है तथा उसकी दृष्टि स्पष्ट होती है। जिस व्यक्ति में तमस् गुण होता है, उस व्यक्ति में सम्भ्रान्ति तथा न्यामोह अधिक होता है। ऐसे व्यक्ति के ध्यान में विचलन अधिक होता है।

फ्रॉम एवं सुलिवान ने भी सामाजिक और सांस्कृतिक तत्त्वों के महत्त्व पर प्रकाश डाला है और साथ में फ्रॉयड, मेयर तथा हाइट के विचारों से प्रभावित हुए। इन्होंने फ्रॉयड के अचेतन के महत्त्व, चिन्ता की धारणा तथा व्यक्तित्व के विकास में बाल्यावस्था के महत्त्व को पूर्णरुप से स्वीकार किया है, परन्तु इन्होंने यौन की मूल प्रवृत्ति का सार्वजनिक होना, मातृप्रेम ग्रन्थि सिद्धान्त, बाल्यावस्था की लैंगिकता एवं अहं, उपाहं एवं पराहं के परिशोधन से सम्बन्धित फ्रॉयड के विचारों को खण्डित किया है।

इनकी जगह नव-फ्रॉयडवादी मनोवैज्ञानिकों ने समाज और संस्कृति का प्रभाव तथा अन्तः पारस्परिक सम्बन्धों का महत्त्व बताया। इस प्रकार, इनके विचार मेयर और फ्रॉयड दोनों के सम्मिलित रूप हैं।

www.studyofeducation.com

कार्ल रोजर्स का व्यक्तित्व का सांवृत्तिक (स्व) सिद्धान्त

कार्ल रोजर्स (1902-87) ने व्यक्तित्व के जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, वह घटना विज्ञान या संवृत्तिशास्त्र के नियमों पर आधारित है। रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त को आत्म सिद्धान्त या व्यक्ति केन्द्रित सिद्धान्त भी कहा जाता है। रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त में मानव प्रकृति के बारे में जो पूर्वकल्पनाएँ की गई हैं, वे निम्नलिखित हैं

- इस सिद्धान्त में मानव प्रकृति की कुछ महत्त्वपूर्ण पूर्वकल्पनाओं; जैसेस्वतन्त्रता, विवेकपूर्णतावाद, पूर्णतावाद, परिवर्तनशीलतावाद आत्मनिष्ठता, अग्रलक्षता, विषमस्थिति तथा अज्ञेयता पर अधिक बल डाला गया है।

- दूसरी तरफ इस सिद्धान्त में मानव-प्रकृति के शरीर गठनात्मक पूर्वकल्पना पर नाममात्र का बल डाला गया है।

रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त को निम्नलिखित तीन प्रमुख भागों में बाँटा गया है, जिसका उल्लेख निम्न है

व्यक्तित्व के स्थायी पहलू

रोजर्स का व्यक्तित्व सिद्धान्त उनके द्वारा प्रतिपादित क्लाइण्ट-केन्द्रित मनोचिकित्सा से प्राप्त अनुभूतियों पर आधारित है। जो निम्न प्रकार हैं

प्राणी रोजर्स के अनुसार, प्राणी एक ऐसा दैहिक जीव है, जो शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों ही तरह से कार्य करता है। इसमें प्रासंगिक क्षेत्र तथा आत्मन दोनों ही सम्मिलित होते हैं। रोजर्स का मत है कि प्राणी सभी तरह की अनुभूतियों का केन्द्र बिन्दु होता है। सभी तरह की चेतन एवं अचेतन अनुभूतियों के योग से जिस क्षेत्र का निर्माण होता है, उसे - प्रासंगिक क्षेत्र कहा जाता है।

आत्मन रोजर्स का व्यक्तित्व सिद्धान्त का यह सबसे महत्त्वपूर्ण सम्प्रत्यय है। धीरे-धीरे अनुभव के आधार पर प्रासंगिक क्षेत्र हो जाता है और इस भाग को ही रोजर्स ने आत्मन की संज्ञा दी है। उनका मत है किसी व्यक्ति में आत्मन नहीं होता है, बल्कि स्वयं आत्मन का अर्थ ही सम्पूर्ण प्राणी से होता है। रोजर्स के अनुसार, आत्मन का विकास शैशवावस्था में होता है, जब शिशु की अनुभूतियों का एक अंश या भाग अधिक मूर्त रुप प्राप्त करने लगता है और 'मैं' या 'मुझको' के रुप में धीरे-धीरे विशिष्ट होने लगता है।

रोजर्स के अनुसार, आत्मन के दो उपतन्त्र हैं, जो निम्नलिखित हैं

आत्म-सम्प्रत्यय आत्म-सम्प्रत्यय से तात्पर्य व्यक्ति के उन सभी पहलुओं एवं अनुभूतियों से होता है, जिससे व्यक्ति अवगत होता है। हालाँकि उसका यह प्रत्यक्षण हमेशा सही नहीं होता है।

आदर्श-आत्मन इससे तात्पर्य अपने बारे में विकसित की गई एक ऐसी छवि से होता है, जिसे वह आदर्श मानता है। दूसरे शब्दों में, आदर्श-आत्मन में वे सभी गुण आते हैं जो प्रायः धनात्मक होते हैं, जिसे व्यक्ति अपने में विकसित होने की इच्छा करता है।

व्यक्तित्व की गतिकी

रोजर्स ने व्यक्तित्व गतिकी की व्याख्या करने के लिए महत्त्वपूर्ण अभिप्रेरक का भी वर्णन किया है, जिसे उन्होंने वस्तुवादी प्रवृत्ति कहा है। रोजर्स (1959) के शब्दों में, वस्तुवादी प्रवृत्ति से तात्पर्य प्राणी में सभी तरह की क्षमताओं को विकसित करने की जन्मजात प्रवृत्ति से होता है, जो व्यक्ति को उन्नत बनाने या प्रोत्साहन देने का कार्य करती है। रोजर्स का मत है कि व्यक्तित्व की दो मुख्य आवश्यकताएँ होती हैं, जिनसे उनका व्यवहार, लक्ष्य की ओर निर्देशित होता है। इन दोनों का वर्णन निम्नलिखित है

अनुरक्षण आवश्यकता इस आवश्यकता के माध्यम से व्यक्ति अपने आप को ठीक ढंग से अनुरक्षित करके रखता है। इससे व्यक्ति अपनी मूल आवश्यकताओं; जैसे—भोजन की आवश्यकता, हवा की आवश्यकता तथा सुरक्षा की आवश्यकता आदि की सन्तुष्टि की ओर अग्रसर होता है। इससे व्यक्ति अपने आत्म-सम्प्रत्यय के विचारों को सुरक्षा भी प्रदान करता है।

www.studyofeducation.com

संवृद्धि आवश्यकता यद्यपि व्यक्ति अपने आत्म-सम्प्रत्यय को यथावत बनाए रखता है और उसमें परिवर्तन साधारणत: नहीं चाहता है, फिर भी उसमें अपने आपको विकसित करने की तथा पहले से और भी अधिक उन्नत बनाने की भी एक प्रेरणा होती है। इस संवृद्धि आवश्यकता की अभिव्यक्ति कई रुपों में होती है; जैसे—व्यक्ति द्वारा उन चीजों को सीखना, जिनसे उन्हें तुरन्त पुरस्कार नहीं मिलता है, एक ऐसी ही आवश्यकता का उदाहरण है। इसके अतिरिक्त उत्सुकता, आत्म-अन्वेषण, परिपक्वता तथा दोस्ती आदि के रुप में भी संवृद्धि आवश्यकता की अभिव्यक्ति होती है।

व्यक्तित्व का विकास

रोजर्स ने व्यक्तित्व के विकास में आत्मन तथा व्यक्तित्व की अनुभूतियों में संगतता को महत्त्वपूर्ण बताया है। जब इन दोनों में अर्थात् व्यक्ति की अनुभूतियों तथा उनके आत्म-सम्प्रत्यय के बीच अन्तर हो जाता है, तो इससे व्यक्ति में चिन्ता उत्पन्न होती है। असंगतता के अन्तर से उत्पन्न इस चिन्ता की रोकथाम के लिए व्यक्ति कुछ बचाव प्रक्रियाएँ प्रारम्भ कर देता है। इसे प्रतिरक्षा की संज्ञा दी गई है। रोजर्स ने दो प्रकार के प्रतिरक्षात्मक उपायों को महत्त्वपूर्ण बताया है—विकृति तथा खण्डन।

विकृति में व्यक्ति अपनी अनुभूतियों की एक अनुपयुक्त व्याख्या करता है, ताकि वह आत्म-सम्प्रत्यय के कुछ अनुकूल दिखाई पड़े। यहाँ व्यक्ति अनुभूतियों का प्रत्यक्षण तो करता है, परन्तु उसका वास्तविक अर्थ वह नहीं समझ पाता है। खण्डन में व्यक्ति विरोधी अनुभूतियों को चेतना में लेने से ही मना कर देता है। फलत: व्यक्ति में चिन्ता की मात्रा निश्चित रुप से कम हो जाती है।

गोर्डन आलपोर्ट का व्यक्तित्व सिद्धान्त

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक गोर्डन आलपोर्ट ने व्यक्तित्व सम्बन्धित शीलगुण सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है यही कारण है कि आलपोर्ट के व्यक्तित्व सिद्धान्त को 'आलपोर्ट का शीलगुण सिद्धान्त' भी कहा जाता है। आलपोर्ट के अनुसार, व्यक्ति का व्यवहार व्यक्तित्व के किसी प्रकार द्वारा निर्धारित नहीं होता, बल्कि भिन्न-भिन्न प्रकार के शीलगुणों (Traits) द्वारा नियन्त्रित होता है, जो प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान होते हैं।

इस प्रकार, शीलगुण सिद्धान्त व्यक्तित्व की मूल इकाई को अर्थात् शीलगुणों के आधार पर व्यक्ति के व्यवदार की व्याख्या करता है।

अतः आलपोर्ट ने व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्धारक शीलगुणों का मुख्यतः दो भागों में बाँटा है, जिसका विवरण निम्नलिखित है

सामान्य शीलगुण (Common Trait) सामान्य शीलगुण से तात्पर्य ऐसे शीलगुण से है, जो किसी समाज के अधिकांश लोगों में पाए जाते हैं अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि सामान्य शीलगुण ऐसे गुण हैं, जिनके आधार पर समाज के अधिकांश व्यक्तियों की तुलना आपस में की जा सकती है। ऐसे शीलगुण प्रायः अधिकांश लोगों में पाए जाते हैं।

व्यक्तिगत शीलगुण (Personal Trait) आलपोर्ट के अनुसार, व्यक्तिगत शीलगुण एक अन्य महत्त्वपूर्ण शीलगुण है, जिसे व्यक्तिगत केन्द्रित (प्रवृत्ति) कहा जा सकता है। व्यक्तिगत शीलगुण से तात्पर्य ऐसे शीलगुणों से है, जो किसी समाज के व्यक्ति विशेष तक ही सीमित होते हैं अर्थात् उस समाज के प्रत्येक व्यक्ति में नहीं पाए जाते। यही कारण है कि इन शीलगुणों के आधार पर व्यक्ति विशेष में परस्पर तुलना नहीं की जा सकती। परन्तु एक व्यक्ति का तुलनात्मक अध्ययन विभिन्न पहलुओं से किया जा सकता है।

उदाहरणस्वरूप, यदि हम कहते हैं कि मोहन निष्क्रिय कम, परन्तु सक्रिय ज्यादा है, तो यह व्यक्तिगत प्रवृत्ति का उदाहरण है। आलपोर्ट ने सामान्य शीलगुणों की अपेक्षा व्यक्तिगत शीलगुणों पर अधिक बल दिया है। उनके अनुसार, व्यक्तिगत प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जो व्यक्तित्व के केन्द्र में होती जिन्हें सीधे और स्पष्टतः समझना कठिन होता है।

आलपोर्ट ने व्यक्तिगत प्रवृत्ति के इस दृष्टिकोण को निम्नलिखित तीन भागों में बाँटा है

कार्डिनल प्रवृत्ति (Cardinal Disposition) यह व्यक्तित्व प्रवृत्ति व्यक्तित्व का इतना प्रमुख एवं मुख्य गुण है कि इसे छिपाया नहीं जा सकता तथा प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार में इस प्रवृत्ति को सरलता से देखा जा सकता है। प्रायः सभी व्यक्तियों में कार्डिनल प्रवृत्ति नहीं होती, परन्तु जिनमें होती है, वह व्यक्ति पूर्णरूप से उस प्रवृत्ति के गुण से चर्चित होता है; जैसे-महात्मा गाँधी की कार्डिनल प्रवृत्ति सत्य व अहिंसा में विश्वास सम्बन्धित थी, अतः इस गुण के कारण वह पूरे विश्व में प्रसिद्ध रहे। इस प्रकार, सत्य एवं अहिंसा में विश्वास महात्मा गाँधी की कार्डिनल प्रवृत्ति का उदाहरण है।

केन्द्रीय प्रवृत्ति (Central Disposition) केन्द्रीय प्रवृत्ति प्रायः सभी व्यक्तियों में पाई जाती है, प्रत्येक व्यक्ति में 5 से 10 ऐसे गुण होते हैं जिनके अन्तर्गत उसका व्यक्तित्व अत्यधिक सक्रिय रहता है। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व इन 5 से 10 गुणों के अन्दर ही जीवित है। इस प्रकार के शीलगुणों को केन्द्रीय प्रवृत्ति कहा जाता है। आत्मविश्वास, सामाजिक आदि केन्द्रीय प्रवृत्ति के ही उदाहरण हैं। 5

गौण प्रवृत्ति (Secondry Disposition) गौण प्रवृत्ति व्यक्तित्व के ऐसे गुणों को कहा जाता है, जो व्यक्तित्व के लिए कम महत्त्वपूर्ण होते हैं; जैसे-खाना खाने का तरीका, कपड़े पहनने का ढंग, बाल बनाने आदि के तरीका से व्यक्तित्व को समझने में कुछ विशेष सहायता नहीं मिलती है और न ही इसके आधार पर व्यक्तित्व का कोई विशेष अर्थ निकाला जाता है। आलपोर्ट ने स्पष्ट किया है कि किसी व्यक्ति के लिए एक गुण केन्द्र प्रवृत्ति हो सकता है। बहिर्मुखी व्यक्ति के लिए सामाजिकता एक केन्द्रीय प्रवृत्ति है, परन्तु अन्तःर्मुखी के लिए सामाजिक एक गौण प्रवृत्ति है।

www.studypreducation.com

मैक्स वर्थिमर का व्यक्तित्व सिद्धान्त

मैक्स वर्थिमर एक महान् मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक थे। इन्होंने वर्ष 1910 में गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के सम्बन्ध में तथ्य प्रस्तुत किया तथा वर्ष 1912 में जर्मनी में गेस्टाल्टवाद मनोविज्ञान की स्थापना की। इन्होंने यह विचार 'एक्सपेरिमेण्टल स्टडीज ऑन द परसेप्शन ऑफ मूवमेण्ट' शीर्षक से प्रस्तुत किया। वर्थिमर ने अपने सहयोगियों कुर्त कोफ्का एवं कोहलर के साथ मिलकर एकत्रित किए गए तथ्यों के आधार पर गेस्टाल्ट सिद्धान्त सम्बन्धित प्रयोग किए। इन्होंने इस सन्दर्भ अधिगम में अन्तर्दृष्टि विचारों को महत्त्व दिया, जोकि आन्तरिक विचारों एवं तक पर आधारित थे। वर्थिमर ने यह तर्क दिया कि अन्तर्दृष्टि एवं तार्किक चिन्तन किसी घटित समस्या का त्वरित समाधान सम्भव है। इन्होंने सृजनात्मकता, नवीन विचारों, अन्तर्दृष्टि के माध्यम से समस्या समाधान प्रवृत्ति को महत्त्वपूर्ण माना है। इन्होंने गेस्टाल्टवाद सम्प्रदाय के स्कूल की स्थापना वुण्ट व टिचनर की आणविक विचारधारा के विरोध में की।

इस सम्प्रदाय ने व्यवहार में सम्पूर्णता पर बल देते हुए बताया कि यद्यपि सभी अंश में मिलकर सम्पूर्णता का निर्माण करते हैं, परन्तु सम्पूर्णता की विशेषताएँ अंश को विशेषताओं से भिन्न होती हैं। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने इसे गेस्टाल्ट की संज्ञा दी जिसका अर्थ 'प्रारुप', 'आकार' या 'आकृति' बताया। इस स्कूल द्वारा प्रत्यक्षण के क्षेत्र में प्रयोगात्मक शोध किए गए हैं जिससे प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का नक्शा ही बदल गया। प्रत्यक्ष के अतिरिक्त इन्होंने सीखना, चिन्तन तथा स्मृति के क्षेत्र में काफी योगदान दिया, जिसने शिक्षा मनोविज्ञान को अत्यधिक प्रभावित किया।

कुर्त कोफ्का का व्यक्तित्व सिद्धान्त

कुर्त कोफ्का एक प्रसिद्ध जर्मन मनोवैज्ञानिक थे, जिनका जन्म एवं शिक्षा बर्लिन में हुई। इन्होंने 20वीं शताब्दी में मैक्स वर्थिमर एवं कोहलर के साथ मिलकर गेस्टाल्टवाद मनोविज्ञान का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इन्होंने धारणाओं, श्रवण दोष, मस्तिष्क विकृति मरीजों के सीखने के तरीकों के अन्तर्गत विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। वर्ष 1913 में इन्होंने बेटरेज जर साइकोलॉजी गेस्टाल्ट शीर्षक से विभिन्न सिद्धान्त प्रकाशित किए। वर्ष 1921 में कोफ्का का सबसे बड़ा योगदान द ग्रोथ ऑफ माइण्ड था। यह पुस्तक विकसित मनोविज्ञान के क्षेत्र में इनकी सबसे बड़ी देन थी। वर्ष 1928 में इस पुस्तक का अंग्रेजी में अनुवाद किया गया।

- 14 वर्ष बाद वर्ष 1935 में इन्होंने प्रिंसिपल ऑफ गेस्टाल्ट साइकोलॉजी नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक ने गेस्टाल्ट समूह के लोगों एवं विद्यार्थियों को गेस्टाल्ट सिद्धान्त को समझने तथा अपने विचार प्रस्तुत करने में सहायता की। कोफ्का सीखने के सम्बन्ध में प्राथमिक स्तर पर इन्द्रिय जनित अधिगम को महत्त्व देते थे। जोकि एक क्रमबद्ध रुप से होता है। उदाहरणार्थ-एक बच्चा जो गर्म स्टोव के द्वारा जल जाता है। वह यह क्रिया दोबारा नहीं करेगा। उनका विश्वास था कि अधिकांश अधिगम दूसरों के व्यवहार के अनुकरण द्वारा होता है। यद्यपि यह सामान्य प्रवृत्ति है। कोफ्का का मानना था कि सर्वोच्च प्रकार का अधिगम तार्किक (विचार शक्ति, चिन्तन) अधिगम है।

- गेस्टाल्ट एक जर्मन शब्द है जिसके लिए आंग्ल शब्द में उपयुक्त पर्यायवाची शब्द नहीं है। अत: इसे आंग्ल मनोवैज्ञानिक साहित्य में ज्यों का त्यों ग्रहण किया गया है। गेस्टाल्ट का अर्थ एक आकृति की पूर्णता या समग्रता के रूप में लिया जा

www.studyofeducation.com

सकता है। अत: गेस्टाल्टवाद सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति किसी वस्तु को आंशिक रुप से नहीं, अपितु पूर्ण रूप से सीखता है। वह वस्तु को एक इकाई के रुप में देखता है तथा उसके सम्पूर्ण रूप को ग्रहण कर बाद में उसके विभिन्न भागों पर दृष्टि डालता है, उदाहरणार्थ, किसी फूल को पूर्ण रुप में देखकर तथा समझकर ही उसके भागों का विश्लेषण करना उपयुक्त रहता है।

- वास्तव में, गेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिक सीखने का केवल प्रयास करते हुए भूल सुधारने अथवा किसी उद्दीपन के प्रति सहज अनुक्रिया व्यक्त करने जैसा कार्य नहीं करते, बल्कि वे उसे एक उद्देश्यपूर्ण अन्वेषणात्मक एवं रचनात्मक प्रक्रिया मानकर चलते हैं। उनके अनुसार अधिगमकर्ता जो कुछ सीख रहा होता है, उसका समग्र रुप से प्रत्यक्षीकरण करता है तथा उसमें निहित संयोगों अथवा संयोजनों के प्रकार का विश्लेषण करता है व प्रत्यक्षीकरण एवं तार्किक विश्लेषण के माध्यम से किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है।

गेस्टाल्टवाद मनोवैज्ञानिकों (कोहलर, मैक्स वर्थिमर, कुर्त कोफ्का, लेविन) ने सम्पूर्ण परिस्थितियों के प्रत्यक्षीकरण एवं बुद्धिमत्ता द्वारा उचित अनुक्रिया व्यक्त करने की योग्यता के लिए अन्तर्दृष्टि (Insight) शब्द का प्रयोग किया है। अन्तर्दृष्टि या सूझ एक प्रकार की मानसिक योग्यता है, जो मनुष्यों में अधिक पाई जाती है। इसके द्वारा किसी समस्या का उचित समाधान किया जा सकता है।

www.studyofeducation.com

व्यक्तित्व के प्रकार

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के सिद्धान्तों को मुख्यतः दो आधारों पर विभाजित कर व्यक्तित्व की व्याख्या की है। इसके प्रथम भाग में शारीरिक गुणों तथा दूसरे भाग में मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर भिन्न-भिन्न प्रकारों में विभाजित किया गया है, जिसका विवरण निम्नलिखित है

शारीरिक गुणों के आधार पर

शारीरिक गुणों के आधार पर प्रतिपादित सिद्धान्त को शरीर गठन सिद्धान्त कहा गया है। क्रेमर, जो एक जर्मन मनोचिकित्सक भी थे, उन्होंने शारीरिक गुणों के आधार पर व्यक्तित्व के चार प्रकार बताए हैं। जिनका वर्णन निम्नलिखित है

- **स्थूलकाय प्रकार** ऐसे व्यक्ति का कद छोटा होता है तथा शरीर भारी एवं गोलाकार होता है। ऐसे लोगों की गर्दन छोटी एवं मोटी होती है। इस प्रकार के व्यक्ति के स्वभाव की कुछ विशेषता; जैसे-ऐसे व्यक्ति सामाजिक होते हैं, खाने-पीने तथा सोने में काफी मजा लेते हैं तथा वे खुशमिजाज होते हैं।

- **कृशकाय प्रकार** इस तरह के व्यक्ति का कद लम्बा होता है, परन्तु वे दुबले-पतले शरीर के होते हैं। ऐसे लोगों का स्वभाव कुछ चिड़चिड़ा होता है, सामाजिक उत्तरदायित्व से दूर रहने की प्रवृत्ति अधिक देखी जाती है। ऐसे व्यक्ति में दिवास्वप्न अधिक होता है तथा काल्पनिक दुनिया में भ्रमण करने की आदत इनमें अधिक तीव्र होती है।

- **पुष्टकाय प्रकार** इस प्रकार के व्यक्ति के शरीर की मांसपेशियाँ काफी विकसित एवं गठी हुई होती हैं तथा शारीरिक कद न तो अधिक लम्बा और न ही अधिक मोटा होता है। ऐसे व्यक्ति के स्वभाव में न तो अधिक चंचलता और न ही अधिक मन्दन होता है। ऐसे व्यक्ति बदलती हुई परिस्थिति के साथ सरलता से समायोजन कर लेते हैं। अतः इन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा काफी मिलती है। .

- **विशालकाय प्रकार** इस श्रेणी में उन व्यक्तियों को रखा जाता है, जिनमें ऊपर के तीन प्रकारों में से किसी भी एक प्रकार का स्पष्ट गुण नहीं मिलता है, बल्कि इन तीनों प्रकारों का गुण मिला-जुला होता है। शेल्डन ने वर्ष 1940 में शारीरिक गठन के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण करने के लिए 4,000 कॉलेज के छात्रों की नग्न तस्वीर (Naked Pictures) का अध्ययन कर अपने विश्लेषण के आधार पर व्यक्तित्व को मुख्यत: तीन भागों में विभाजित किया है। जिनमें कुछ विशेष प्रकार के शीलगुण होते हैं, जिनसे उसके स्वभाव का पता चलता है। शेल्डन द्वारा वर्णित तीन प्रकार का विवरण निम्नलिखित है -

    - **एण्डोमार्फी या मिसरोटोनिया एण्डोमार्फी** प्रकार के व्यक्ति मोटे एवं नाटे होते हैं। इनका शरीर गोलाकार दिखता है। शेल्डन का यह प्रकार क्रेश्मर के स्थूलकाय प्रकार से मिलता-जुलता है। ऐसे व्यक्ति स्वभाव से आराम -पसन्द, खुशमिजाज, सामाजिक तथा खाने-पीने की चीजों में अधिक अभिरुचि दिखाते हैं।

    - **मीसोमार्फी शारीरिक** रुप से सन्तुलित, अच्छा स्वास्थ्य और फुर्तीला बदन होना इनकी मुख्य पहचान है। इस प्रकार के व्यक्ति साहसी, निडर, फुर्तीले, आशावादी तथा कर्मठ होते हैं।

    - **एक्टोमार्फी या सेरीब्रोटोनिया** इस प्रकार के व्यक्ति का कद लम्बा होता है, किन्तु ऐसे व्यक्ति दुबले-पतले होते हैं। इनके शरीर की मांसपेशियाँ अविकसित होती हैं और इनका पूरा गठन इकहरा होता है। इस प्रकार के व्यक्ति की चित्तप्रकृति को सेरीब्रोटोनिया कहते हैं। ऐसे व्यक्ति एकान्तप्रिय, संकोचशील एवं लज्जालु प्रकृति के होते हैं।

मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर

www.studyofeducation.com

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व का वर्गीकरण मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर किया है। मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर व्यक्तिगत प्रकारता के प्रमुख प्रणेता युग थे। गुंग ने व्यक्तित्व के निम्नांकित तीन प्रकार बताए हैं

बहिर्मुखी इस तरह के व्यक्ति की अभिरुचि विशेषकर समाज के कार्यों की ओर होती है। वह अन्य लोगों से मिलना-जुलना पसन्द करता है तथा प्रायः खुशमिज़ाज होता है। ऐसे व्यक्ति आशावादी होते हैं।

अन्तर्मुखी ऐसे व्यक्ति में बहिर्मुखी के विपरीत गुण पाए जाते हैं। इस तरह के व्यक्ति लोगों से मिलना-जुलना बहुत पसन्द नहीं करते हैं। ऐसे लोग रुढ़िवादी प्रकृति के होते हैं। परिस्थिति का प्रभाव ऐसे व्यक्ति पर बहुत कम होता है।

अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी (उभयमुखी) इस प्रकार के व्यक्ति में प्रायः अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी दोनों की विशेषताएँ पाई जाती हैं। वह किन्हीं परिस्थितियों एवं व्यक्ति विशेष के साथ मिलना-जुलना, खुश रहना एवं व्यवहार स्थापित करने में अग्रसर होता है, अपने विचारों से दूसरों को प्रभावित करता है तथा कुछ सामाजिक कार्यक्रमों में खुलकर भाग लेता है, जबकि दूसरी ओर किन्हीं विशेष परिस्थितियों में लोगों के समक्ष शंकालु, लज्जा एवं असमायोजन का सामना करता है। अत: कहा जा सकता है कि ऐसे व्यक्तियों में प्राय: समयानुसार दोनों व्यक्तित्व सम्बन्धित (अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी) विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health)

www.studyeducation.com

मानसिक स्वास्थ्य का सरल शब्दों में अर्थ उस स्वास्थ्य से है जिसका सम्बन्ध स्वच्छ मानस अथवा मन से होता है। शारीरिक स्वास्थ्य जहाँ शरीर के स्वास्थ्य से सम्बन्धित है, इस रुप में शरीर के अंग प्रत्ययों की उचित वृद्धि, विकास और उनके ठीक प्रकार से संचालन, देखभाल एवं स्वस्थ रखने की बात करता है। उसी सन्दर्भ में मानसिक स्वास्थ्य मानसिक शक्तियों के उचित विकास तथा मन को स्वस्थ एवं सुखी बनाने के लिए सभी प्रकार की देखभाल, उपायों एवं उचित व्यवहार की व्याख्या करता है। मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ गुड कार्टर द्वारा सम्पादित शिक्षा को शब्दकोश में 'मन की स्वस्थ पूर्णता या समग्रता' के रुप में दिया गया है।

इस सन्दर्भ में कुछ प्रमुख विद्वानों की परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं

जे. ए. हेडफील्ड के अनुसार, "मानसिक स्वास्थ्य से तात्पर्य है व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का अपने पूर्णरुप से अच्छी तरह तालमेल बैठाते हुए कार्य करते रहना।"

कटस एवं मोसले के अनुसार, "मानसिक स्वास्थ्य वह योग्यता है जो हमें अपने जीवन की कठिन परिस्थितियों में समायोजन करने में सहायक होती है।"

पी. बी. ल्यूकन के अनुसार, "मानसिक रुप से व्यक्ति वह है जो स्वयं खुश रहे, अपने पड़ोसियों के साथ शान्ति से रहता हो, अपने बालकों को स्वस्थ नागरिक के रुप में ढाल सके और इस प्रकार अपने मूल कर्तव्यों का निर्वाह करने के पश्चात् भी उसमें इतनी शक्ति बची रहे कि वह समाज के लिए कुछ भी उचित योगदान दे सके।"

अच्छे मानसिक स्वास्थ्य के लक्षण

सामान्यतः अच्छे मानसिक स्वास्थ्य वाले व्यक्ति में निम्नलिखित लक्षण देखे जा सकते हैं

- ऐसे व्यक्ति में बदलती हुई परिस्थितियों एवं हालातों में अपने आप को बदलने एवं भली-भाँति समायोजन करने की योग्यता होती है। .
- वह संवेगात्मक रुप से स्थिर एवं परिपक्व होता है। वह अपने संवेगों को उचित रुप से अभिव्यक्त व नियन्त्रित कर सकता है।
- वह अनावश्यक चिन्ताओं, मानसिक द्वन्द्वों, कुण्थाओं, भग्नाशाओं तथा मानसिक रोगों से पीड़ित नहीं होता।
- वह लैंगिक रुप से सही प्रकार समायोजित होता है। उसकी काम भावनाएँ अतृप्त एवं अमर्यादित नहीं होती।
- वह सामाजिक रुप से समायोजित होता है, क्योंकि उसमें दूसरों का साथ निभाने की पर्याप्त योग्यता होती है।
- वह जीवन की असफलताओं से विचलित नहीं होता और न ही अपनी त्रुटियों एवं असफलताओं के कारण दुःखी और चिन्तित होता है।
- वह अपने व्यक्तित्व, कार्य एवं व्यवसाय से सन्तुष्ट रहता है।
- उसमें सामाजिक दृष्टि से उचित एवं स्वस्थ रुचियाँ तथा अभिरुचियाँ पाई जाती हैं।
- वह कल्पना और स्वप्नों संसार की अपेक्षा यथार्थ और वास्तविकता के निकट होता है।
- उसकी मानसिक शक्तियाँ उचित प्रकार से विकसित होती हैं। वह स्वतन्त्र रुप से सोच सकता है एवं उचित निर्णय ले सकता है।
- वह आत्मविश्वासी होता है। किसी नवीन कार्य को करने में अनावश्यक रुप से चिन्तित एवं भयभीत नहीं होता।
- उसमें सामाजिक रुप से अच्छी आदतें तथा उचित सामाजिक गुण पाए जाते हैं।
- वह अपने कर्तव्यों को निभाने में पूर्ण रुप से नियमित एवं समय का पाबन्द होता है। वह विस्मृत (भुलक्कड़) नहीं होता।
- वह अपने पर्यावरण व समूह विशेष में स्वयं को सुरक्षित व सम्मानित अनुभव करता है। वह अपने समूह के प्रति निष्ठावान होता है।
- वह जीवन के विषय में उचित दृष्टिकोण रखता है तथा उसके जीवन के आदर्श एवं मूल्य उचित होते हैं।

www.studyfoeducation.com

मानसिक स्वच्छता (Mental Hygiene)

व्यक्ति का स्वास्थ्य उसकी सबसे बड़ी पूँजी है। यह कथन शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्यों पर पूर्णतः खरा उतरता है। मानसिक स्वास्थ्य का महत्त्व जैसा कि पहले बताया जा चुका है, शारीरिक स्वास्थ्य से अधिक है, क्योंकि इसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व के सभी पक्षों-शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक, नैतिक तथा सौन्दर्यात्मकता के पूर्ण एवं सन्तुलित विकास पर ध्यान दिया जाता है। मानव जीवन को सुखी बनाने की कुंजी एक प्रकार से सन्तुलित मानसिक विकास एवं मानसिक स्वच्छता में निहित है, परन्तु किन्हीं कारणवश मानसिक अस्वस्थता होने पर मानसिक स्वच्छता रक्षात्मक युक्तियों के द्वारा मानसिक क्रियाओं का सन्तुलन किया जाता है। अत: मानसिक विकारों का निवारण करने एवं मानसिक सन्तुलन को बनाए रखने के लिए मानसिक स्वच्छता के अन्तर्गत रक्षात्मक युक्तियों अथवा मनोरचनाओं का प्रयोग किया जाता है।

रक्षात्मक युक्तियाँ या मनोरचनाएँ

हमारे जीवन में अनेक ऐसे अवसर आते हैं, जब हम अपने द्वारा किसी कार्य विशेष के सन्दर्भ में किए गए प्रयासों में सफल नहीं हो पाते। ऐसी स्थिति में अपनी असफलताओं एवं कुण्थाओं से हमारे अहम् को ठेस लगती है, फलस्वरूप हम हीन भावनाओं, मानसिक द्वन्द्वों तथा चिन्ताओं से ग्रस्त होने लगते हैं तथा मानसिक अस्वस्थता के शिकार होने लगते हैं, परन्तु ऐसी स्थितियों में चिन्ता, निराशा से बचने के लिए तथा अपना मानसिक स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए हम जिन रक्षात्मक साधनों तथा उपायों का प्रयोग करते हैं, उन्हें रक्षात्मक युक्तियाँ अथवा मनोरचनाएँ कहते हैं। रक्षात्मक युक्तियों के सन्दर्भ में कुछ मुख्य परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं

www.studyineducation.com

डेबीसन एवं नीएले के अनुसार, "दुश्चिन्ता से अहम् (Ego) की रक्षा हेतु अवचेतन मन जिस युक्ति की सहायता लेता है, उसे रक्षात्मक युक्ति कहा . जाता है।"

एच.ए. कैरोल के अनुसार, "समायोजन या रक्षात्मक युक्ति से अभिप्राय उस युक्ति से है, जिसका प्रयोग किसी आवश्यकता की किसी और अप्रत्यक्ष ढंग से सन्तुष्टि करने के लिए किया जाता है, ताकि तनाव को कम किया जा सके और आत्मसम्मान बनाए रखा जा सके।"

कुछ महत्त्वपूर्ण रक्षात्मक युक्तियाँ निम्नलिखित हैं .

तर्कसंगतीकरण या युक्तिकरण (Rationalisation) इस रक्षा युक्ति के प्रयोग द्वारा व्यक्ति अपने किए हुए कार्य या व्यवहार को उचित सिद्ध करने का प्रयास करता है। इसे तर्कसंगतीकरण इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इसमें व्यक्ति विभिन्न प्रकार के तर्क देकर अपने व्यवहार को उचित ठहराने का प्रयत्न करता है; जैसे-अंगूर खट्टे हैं। तर्कसंगतीकरण ऐसी रक्षा युक्ति है, जिसमें व्यक्ति

प्रयत्न करने में असफल होता है, तो वह अंगूरों को खट्टा कहने वाली लोमड़ी की तरह तर्कसंगतीकरण युक्ति का सहारा लेते हुए यह कहता हुआ पाया जा सकता है कि यह कार्य उसके योग्य एवं उसके हित के लिए उचित नहीं था।

प्रक्षेपण (Projection) प्रक्षेपण की क्रिया के अन्तर्गत व्यक्ति अपनी कमजोरियों एवं दोषों की झलक दूसरों में देखने का प्रयत्न करता है। जैसे एक कुरूप व्यक्ति का दूसरों में भी कुरुपता खोजना। इसी प्रकार, नकल करते हुए पकड़ा जाने वाला विद्यार्थी यह कहकर अपने आप को बचाने या सन्तोष देने का प्रयास करता है कि दूसरे विद्यार्थी भी नकल कर रहे थे। इस प्रकार प्रक्षेपण अपनी कमजोरियों को नगण्य सिद्ध करके अपने अहं एवं आत्मसम्मान की रक्षा करने का एक अस्थायी प्रयास करता है।

प्रतिक्रिया या प्रतिक्रियाकरण (Reaction Formation) कई बार किसी व्यक्ति की इच्छाएँ एवं आवश्यकताएँ इस प्रकार की होती हैं, जिन्हें सामाजिक रुप से प्रकट करना या उनकी पूर्ति होना व्यक्ति के अपने हित में नहीं होता, क्योंकि इससे उसके सम्मान तथा अहं को चोट पहुँचने का खतरा होता है तथा सामाजिक रुप से उसे तिरस्कार या अपयश सहना पड़ता है। वह अच्छी तरह से जानता है कि ऐसी बातों या व्यवहार से बचने के लिए वह प्रतिक्रियात्मक यानि इससे बिल्कुल विपरीत व्यवहार को अपनाता है। उदाहरणस्वरुप, एक सौतेली माँ जो अपनी सौतेली बेटी से बहुत घृणा करती है, वह प्रतिक्रियाकरण युक्ति को अपनाते हुए इससे बहुत प्यार एवं स्नेह को अपने व्यवहार का अंग बना लेती है।

दमन (Repression) हमारे दुःखद अनुभव, कटु स्मृतियाँ, मानसिक संघर्ष तथा अतृप्त आकांक्षाओं को अचेतन मन के किसी कोने में दबा दिया जाता है अर्थात् दमन कर दिया जाता है। इस प्रकार हम बहुत-सी बातों को, जो हमें चिन्तित एवं दुःखी करती हैं, जानबूझकर भूल जाने का प्रयास करते हैं। इस अवस्था में हमें इस कारण से तनावों और संघर्षों से अस्थायी मुक्ति मिल जाती है।

प्रतिगमन (Regression) प्रतिगमन का शाब्दिक अर्थ पीछे की ओर लौटना अथवा भूत में वापिस जाना है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत कोई व्यक्ति स्वयं को मानसिक तनावों और संघर्षों से बचाने के लिए अपनी आयु स्तर के नीचे के स्तर का व्यवहार करने लगता है। प्रतिगमन युक्ति का प्रयोग अपने बचाव हेतु प्रायः ऐसे व्यक्तियों द्वारा ही किया जाता है, जिन्हें अपने आप पर समुचित विश्वास नहीं होता। जो एकान्तप्रिय अन्तर्मुखी तथा कायर होते हैं। ऐसे व्यक्ति किसी नई परिस्थिति में उचित समायोजन नहीं कर पाते तथा स्वयं को असुरक्षित अनुभव करते हुए पुरानी परिस्थितियों में प्रतिगमन कर लेते हैं।

आक्रामकता (Aggression) किसी भी कारण से अपने क्रोधपूर्ण व्यवहार को हिंसात्मक (शाब्दिक या क्रियात्मक) ढंग से अभिव्यक्त करना आक्रामकता कहलाता है। बहुत से लोग समायोजन या रक्षा युक्ति के रूप में हिंसात्मक अभिव्यक्ति को अपनाते हैं। आक्रामकता रक्षा युक्ति रक्षक भी है और भक्षक भी। इस रक्षा युक्ति को प्रयोग में लाना कई बार आवश्यक भी हो जाता है, परन्तु भली-भाँति सोच-समझकर इस रक्षा युक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए, जिससे क्रोध के वशीभूत होकर कोई ऐसा कार्य न किया जाए, जिससे जान-माल की हानि हो।

www.studyofeducation.com

विस्थापन (Displacement) कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति किसी विशेष व्यक्ति या वस्तु के प्रति अपने विचारों व भावनाओं को खुलकर व्यक्त करने में स्वयं को असमर्थ पाता है। वह अपनी अभिव्यक्ति के लिए किसी दूसरी वस्तु या व्यक्ति को माध्यम बनाकर अपनी दबी हुई कुण्ठित भावनाओं तथा आक्रोश को निकालने का प्रयास प्रकट करता है। इस प्रकार वह अपने अहं और स्व को आघात लगने से बचा लेता है। बचाव की इस युक्ति को विस्थापन युक्ति की संज्ञा दी जाती है।

कल्पना प्रवाह एवं दिवास्वप्न (Fantasy and Day Dreaming) कल्पना प्रवाह या दिवास्वप्न ऐसी रक्षा युक्तियाँ हैं, जिनमें कोई व्यक्ति अपनी पसन्द की निजी काल्पनिक दुनिया बसाकर स्वयं को उसी में बन्द कर अपनी अतृप्त इच्छाओं, दूषित भावनाओं तथा कुण्थाओं की पूर्ति करता रहता है। इस प्रकार, वह जीवन की वास्तविकताओं के सन्दर्भ में किसी तरह सन्तुष्ट एवं सुखी होने के लिए अपना ही रास्ता चुन लेता है। कल्पना प्रवाह द्वारा ही चित्रकार, मूर्तिकार, संगीतकार, वैज्ञानिक तथा शोधकर्ता नई मंजिलें प्राप्त करते हैं।

www.studyofeducation.com

PART 2 - Intelligence बुद्धि के प्रति उपागम : के ऐकिक से बहुलित तक

बुद्धि का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Intelligence)

बुद्धि शब्द का प्रयोग सामान्यतः प्रज्ञा, प्रतिभा, ज्ञान एवं समझ इत्यादि के अर्थों में किया जाता है। यह वह शक्ति है, जो हमें समस्याओं का समाधान करने एवं उद्देश्यों को प्राप्त करने में सक्षम बनाती है। बुद्धि के सन्दर्भ में मनोवैज्ञानिकों में मतभेद हैं, फिर भी यह निश्चित रुप से कहा जाता है कि यह किसी के व्यक्तित्व का मुख्य निर्धारक है, क्योंकि इससे व्यक्ति की योग्यता का पता चलता है। इसे व्यक्ति की जन्मजात शक्ति कहा जाता है, जिसके उचित विकास में उसके परिवेश की भूमिका प्रमुख होती है। मानव विकास की विभिन्न अवस्थाओं में बुद्धि के विकास में भी अन्तर होता है।

बुद्धि के मुख्य तीन पक्ष **कार्यात्मक, संरचनात्मक** एवं **क्रियात्मक** होते हैं। बुद्धि को मुख्यतः तीन श्रेणियों सामाजिक बुद्धि, स्थूल बुद्धि एवं अमूर्त बुद्धि में रखा गया है। वंशानुक्रम एवं वातावरण तथा इन दोनों की अन्तःक्रिया बुद्धि को निर्धारित करने वाले कारक हैं।

बुद्धि के सन्दर्भ में विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा निम्न परिभाषाएँ दी गई हैं

एल.एम. टर्मन के अनुसार, "बुद्धि अमूर्त विचारों के सन्दर्भ में सोचने की योग्यता है"। .

स्टर्न के अनुसार, "बुद्धि व्यक्ति की वह सामान्य योग्यता है, जिसके द्वारा वह सचेत रुप से नवीन आवश्यकताओं के अनुसार चिन्तन करता है। इस तरह, जीवन की नई समस्याओं एवं स्थितियों के अनुसार अपने आपको ढालने की सामान्य मानसिक योग्यता 'बुद्धि' कहलाती है।"

पिण्टर के अनुसार, "जीवन की अपेक्षाकृत नवीन परिस्थितियों से अपना सामंजस्य करने की व्यक्ति की योग्यता ही बुद्धि है।" .

रायबर्न के अनुसार, "बुद्धि वह शक्ति है, जो हमें समस्याओं का समाधान करने और उद्देश्यों को प्राप्त करने की क्षमता देती है।"

वैश्लर के अनुसार, "बुद्धि किसी व्यक्ति के द्वारा उद्देश्यपूर्ण ढंग से कार्य करने, तार्किक चिन्तन करने तथा वातावरण के साथ प्रभावपूर्ण ढंग से क्रिया करने की सामूहिक योग्यता है।"

वुडवर्थ के अनुसार, "बुद्धि, कार्य करने की एक विधि है।"

वुडरो के अनुसार, "बुद्धि, ज्ञान अर्जन करने की क्षमता है।"

हेनमॉन के अनुसार, "बुद्धि में मुख्य तत्त्व होते हैं ज्ञान की क्षमता एवं निहित ज्ञान।"

थॉर्नडाइक के अनुसार, "सत्य या तथ्य के दृष्टिकोण से उत्तम प्रतिक्रियाओं की शक्ति ही बुद्धि है।"

कॉलविन के अनुसार, "यदि व्यक्ति ने अपने वातावरण से सामंजस्य करना सीख लिया है या सीख सकता है, तो उसमें बुद्धि है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के अनुसार, हम यह कह सकते हैं कि बुद्धि अमूर्त चिन्तन की योग्यता, अनुभव से लाभ उठाने की योग्यता, अपने वातावरण से सामंजस्य करने की योग्यता, सीखने की योग्यता, समस्या समाधान करने की योग्यता तथा सम्बन्धों को समझने की योग्यता है।

www.studyofeducation.com

बुद्धि के सिद्धान्त या उपागम

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि के स्वरुप से सम्बन्धित विभिन्न सिद्धान्तों या उपागमों का प्रतिपादन किया है, जिनसे बुद्धि के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ मिलती हैं, जो निम्न प्रकार हैं

एक-कारक सिद्धान्त

एक-कारक सिद्धान्त (One-Factor or Monarchy Theory) का प्रतिपादन बिंने (Binet) ने किया और इस सिद्धान्त का समर्थन कर इसको आगे बढ़ाने का श्रेय टर्मन, स्टर्न एनिंग्हास जैसे मनोवैज्ञानिकों को है। इन मनोवैज्ञानिकों का मत है बुद्धि एक अविभाज्य इकाई है। स्पष्ट है कि इस सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि को एक शक्ति या कारक के रुप में माना गया है। इन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, बुद्धि वह मानसिक शक्ति है, जो व्यक्ति के समस्त कार्यों का संचालन करती है तथा व्यक्ति के समस्त व्यवहारों को प्रभावित करती है।

www.studyofeducation.com

द्वि-कारक सिद्धान्त -

द्वि-कारक सिद्धान्त (Two Factor Theory) के प्रतिपादक स्पीयरमैन हैं। उनके अनुसार बुद्धि में दो कारक हैं अथवा सभी प्रकार के मानसिक कार्यों में दो प्रकार की नानसिक योग्यताओं की आवश्यकता होती है। प्रथम सामान्य मानसिक योग्यता (General Intelligence 'g') द्वितीय विशिष्ट मानसिक योग्यता (Specific Intelligence 's') इस सिद्धान्त की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं

- प्रत्येक व्यक्ति में सामान्य मानसिक योग्यता के अतिरिक्त कुछ-न-कुछ विशिष्ट योग्यताएँ पाई जाती हैं।
- एक व्यक्ति जितने ही क्षेत्रों अथवा विषयों में कुशल होता है, उसमें उतनी ही विशिष्ट योग्यताएँ पाई जाती हैं।
- यदि एक व्यक्ति में एक से अधिक विशिष्ट योग्यताएँ हैं, तो इन विशिष्ट योग्यताओं में कोई विशेष सम्बन्ध नहीं पाया जाता है।
- स्पीयरमैन का यह विचार है कि एक व्यक्ति में सामान्य योग्यता की मात्रा जितनी ही अधिक पाई जाती है, वह उतना ही अधिक बुद्धिमान होता है।

बहु-कारक सिद्धान्त

बहु-कारक सिद्धान्त (Multiple Factor Theory) के मुख्य समर्थक थार्नडाइक थे। इस सिद्धान्त के अनुसार, बुद्धि अनेक तत्त्वों का समूह होती है और प्रत्येक तत्त्व में कोई सूक्ष्म योग्यता निहित होती है। अत: सामान्य बुद्धि नाम की कोई चीज नहीं होती, बल्कि बुद्धि में अनेक स्वतन्त्र, विशिष्ट योग्यताएँ निहित रहती हैं, जो विभिन्न कार्यों को सम्पादित करती हैं। थॉर्नडाइक ने तीन प्रकार की बुद्धि-अमूर्त बुद्धि, सामाजिक बुद्धि तथा यान्त्रिक बुद्धि के बारे में बताया। इसके अतिरिक्त थॉर्नडाइक ने बुद्धि के चार स्वतन्त्र प्रतिमान (Aspects) दिए हैं, जो निम्न हैं

1. **स्तर (Level)** स्तर का शाब्दिक अर्थ होता है कि किसी विशेष कठिनाई स्तर का कितना कार्य किसी व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है।
2. **परास या सीमा (Range)** इसका अर्थ कार्य की उस विविधता से है, जो किसी स्तर पर कोई व्यक्ति समस्या का समाधान कर सकता है।
3. **क्षेत्र (Area)** क्षेत्र का अभिप्राय क्रियाओं की उन कुल संख्याओं से है, जिनका हम समाधान कर सकते हैं।
4. **गति (Speed)** इसका अर्थ कार्य करने की गति है।

प्रतिदर्श सिद्धान्त

प्रतिदर्श सिद्धान्त (Sample Theory) का प्रतिपादन थॉमसन ने किया था। उसने अपने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन स्पीयरमैन के द्वि-कारक सिद्धान्त के विरोध में किया था। थॉमसन ने इस बात का तर्क दिया कि व्यक्ति का बौद्धिक व्यवहार अनेक स्वतन्त्र योग्यताओं पर निर्भर करता है, किन्तु इन स्वतन्त्र योग्यताओं का क्षेत्र सीमित होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि अनेक स्वतन्त्र तत्त्वों से बनी होती है। कोई विशिष्ट परीक्षण या विद्यालय सम्बन्धी क्रिया में इनमें से कुछ तत्त्व स्पष्ट रुप से दिखाई देने लगते हैं। यह भी हो सकता है कि दो या दो से अधिक परीक्षाओं में एक ही प्रकार के तत्त्व दिखाई दें, तब उनमें एक सामान्य तत्त्व की विद्यमानता मानी जाती है। यह भी सम्भव है कि अन्य परीक्षाओं में विभिन्न तत्त्व दिखाई दें, तब उनमें कोई भी तत्त्व सामान्य नहीं होगा और प्रत्येक तत्त्व अपने आप में विशिष्ट होगा।

www.studyoeducation.com

समूह-तत्त्व सिद्धान्त

स्पीयरमैन के सिद्धान्त के विरुद्ध थर्स्टन महोदय ने समूह तत्त्व सिद्धान्त को (Group Element Theory) प्रतिपादित किया। वे तत्त्व जो प्रतिभात्मक योग्यताओं में तो सामान्य नहीं होते, परन्तु अनेक क्रियाओं में सामान्य होते हैं, उन्हें समूह-तत्त्व की संज्ञा दी गई है। इस सिद्धान्त के समर्थकों में थर्स्टन का नाम प्रमुख है। प्रारम्भिक मानसिक योग्यताओं का परीक्षण करते हुए वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि कुछ मानसिक क्रियाओं में एक प्रमुख तत्त्व सामान्य रुप से विद्यमान होता है, जो उन क्रियाओं के अनेक समूह (Group) होते हैं, उनमें अपना एक प्रमुख तत्त्व होता है। समूह तत्त्व सिद्धान्त की सबसे बड़ी कमी यह है कि यह सामान्य तत्त्व की धारणा का खण्डन करता है।

पदानुक्रमिक सिद्धान्त

जे.पी. गिलफोर्ड और उसके सहयोगियों ने बुद्धि परीक्षण से सम्बन्धित अनेक परीक्षणों पर कारक विश्लेषण तकनीक का प्रयोग करते हुए मानव बुद्धि के विभिन्न तत्त्वों या कारकों को प्रकाश में लाने वाला प्रतिमान विकसित किया। इस सिद्धान्त को 'पदानुक्रमिक सिद्धान्त' या 'त्रि-आयामी' भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त के निम्नलिखित पाँच प्रतिमान हैं

1. **संज्ञान (Cognition)** इसका अर्थ होता है, खोज, दोबारा खोज या पहचान की क्षमता इत्यादि।
2. **स्मृति (Memory)** इसका अर्थ होता है, जो भी संज्ञान में आया है उसे धारण करना।
3. **मूल्यांकन (Evaluation)** इस प्रक्रिया के अन्तर्गत व्यक्ति जो कुछ जानता है वह उसकी स्मृति में रहता है तथा जो कुछ वह मौलिक चिन्तन में निर्मित करता है, उनके परिणामों की अच्छाई, सत्यता, उपयुक्तता के विषय में निर्णय लेता है।
4. **अभिसारी चिन्तन (Convergent Thinking)** इस प्रक्रिया के अन्तर्गत व्यक्ति समस्या के ऐसे समाधान पर पहुँचता है, जो परम्परा एवं प्रचलन के अनुसार स्वीकृत एवं सही समझा जाता है।
5. **अपसारी चिन्तन (Divergent Thinking)** इस प्रक्रिया के अन्तर्गत हल निकालता है तथा व्यक्ति उनके परिणाम का आच्छो साथ समस्या का के सन्दर्भ में निर्णय लेता है। 'ऑउट ऑफ द बॉक्स चिन्तन' इसी के अन्तर्गत आता है।

गिलफोर्ड एवं उसके सहयोगियों ने अपने अध्ययन एवं प्रयासों के द्वारा यह प्रतिपादित करने की कोशिश की कि हमारी किसी भी मानसिक प्रक्रिया अथवा बौद्धिक कार्य को तीन आधारभूत आयामों-संक्रिया, सूचना सामग्री या विषय-वस्तु तथा उत्पादन में विभाजित किया जा सकता है।

www.studyofeducation.com

सामाजिक बुद्धि की संकल्पनाएँ (Concept of Social Intelligence)

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक ई. एल. थॉर्नडाइक ने इस सन्दर्भ में बुद्धि के निम्नलिखित तीन प्रकार बताए हैं

सामाजिक बुद्धि

सामाजिक बुद्धि से तात्पर्य ऐसी सामान्य मानसिक क्षमता से है, जिसके द्वारा व्यक्ति अन्य लोगों को समझता है तथा व्यवहार करता है। सामाजिक बुद्धि वाले लोगों का सामाजिक जीवन काफी अच्छा होता है तथा समाज में इनकी प्रतिष्ठा होती है। जिन लोगों में सामाजिक बुद्धि होती है, उनमें अन्य लोगों के साथ प्रभावपूर्ण ढंग से व्यवहार करने की क्षमता, अच्छा आचरण करने की क्षमता एवं समाज के अन्य लोगों के साथ मिल-जुलकर सामाजिक कार्यों में हाथ बँटाने की क्षमता अधिक होती है। ऐसी बुद्धि वाले व्यक्ति को जीवन में व्यावहारिक सफलता दिलाने में काफी सहायक होती है। इसके अभाव में व्यक्ति में अन्य तरह की बुद्धि

होने के बावजूद वह अपने सामाजिक जीवन को सफल बनाने में सहायक नहीं हो पाता, क्योंकि वह इसके अभाव में समाज में प्रभावपूर्ण ढंग से व्यवहार नहीं कर पाता। अतः सामाजिक बुद्धि व्यक्ति को समाज के साथ समायोजन करने में सहायता करती है।

डीवर एवं बालरस्टी ने सामाजिक बुद्धि को परिभाषित करते हुए कहा है कि "सामाजिक बुद्धि, बुद्धि का एक प्रकार है जो किसी व्यक्ति में अन्य व्यक्तियों एवं सामाजिक सम्बन्धों के प्रति व्यवहार में निहित होता है।"

अमूर्त बुद्धि

अमूर्त विषयों के विषय में चिन्तन करने की योग्यता को ही अमूर्त बुद्धि कहा जाता है। ऐसी बुद्धि में व्यक्ति शब्द, प्रतीक तथा अन्य अमूर्त चीजों के द्वारा चिन्तन करता है। इस प्रकार की बुद्धि प्रायः दार्शनिकों, कहानीकारों, गणितज्ञ, कलाकार एवं साहित्यकारों में अधिक होती है। ऐसे व्यक्ति प्रायः अपने विचारों, कल्पनाओं एवं मानसिक प्रतिमाओं के सहारे बड़ी-बड़ी समस्याओं का समाधान कर लेते हैं, जिन छात्रों में अमूर्त बुद्धि अधिक होती है, उनकी शैक्षिक उपलब्धियाँ अधिक श्रेष्ठ होती हैं।

टरमैन के अनुसार, "अमूर्त बुद्धि का महत्त्व छात्रों के अन्य दूसरे तरह की बुद्धि से अधिक होता है। अमूर्त बुद्धि को कुछ लोग सैद्धान्तिक बुद्धि भी कहते हैं।'

मूर्त बुद्धि

मूर्त बुद्धि से तात्पर्य ऐसी मानसिक क्षमता से होता है जिसके द्वारा व्यक्ति मूर्त या ठोस वस्तुओं के महत्त्व को समझता है, उनके विषय में सोचता है तथा अपना इच्छा एवं आवश्यकतानुसार उनमें परिवर्तन लाकर उन्हें उपयोगी बनाता है। इसे 'व्यावहारिक बुद्धि' भी कहा जाता है। जिन बालकों में मूर्त बुद्धि अधिक होती है, वे आगे चलकर एक सफल इंजीनियर या कुशल कारीगर बनने में सफलता प्राप्त करते हैं।

बहुआयामी या बहुल बुद्धि (Multi-Dimensional or Multiple Intelligence)

बहुआयामी बुद्धि का शाब्दिक अर्थ होता है, एक ही व्यक्ति के अन्दर विभिन्न प्रकार के कौशलों का विकास अर्थात् उसमें सामाजिक समझ, राजनैतिक समझ, समस्या समाधान से सम्बन्धित समझ तथा नेतृत्व का गुण इत्यादि का होना।

मनोवैज्ञानिकों ने बहुल बुद्धि के बारे में निम्न परिभाषाएँ दी हैं केली एवं थर्स्टन नामक मनोवैज्ञानिकों ने बताया कि बुद्धि का निर्माण प्राथमिक मानसिक योग्यताओं के द्वारा होता है।

www.studyofeducation.com

- **केली** के अनुसार, "बुद्धि का निर्माण इन योग्यताओं से होता है वाचिक योग्यता, गामक योग्यता, सांख्यिक योग्यता, यान्त्रिक योग्यता, सामाजिक योग्यता, संगीतात्मक योग्यता, स्थानिक सम्बन्धों के साथ उचित ढंग से व्यवहार करने की योग्यता, रुचि और शारीरिक योग्यता।"

- **थर्स्टन** का मत है कि "बुद्धि इन प्राथमिक मानसिक योग्यताओं का समूह होता है प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी योग्यता, तार्किक योग्यता, सांख्यिकी योग्यता, समस्या समाधान की योग्यता, स्मृति सम्बन्धी योग्यता।"

यद्यपि अधिकतर मनोवैज्ञानिकों ने केली एवं थर्स्टन के बुद्धि सिद्धान्तों की आलोचना की, किन्तु अधिकतर मनोवैज्ञानिकों ने यह भी माना कि बुद्धि का बहुआयामी होना निश्चित रुप से सम्भव है। बहुआयामी बुद्धि होने के कारण ही कुछ लोग अनेक प्रकार के कौशलों में निपुण होते हैं।

संवेगात्मक बुद्धि (Emotional Intelligence)

www.studyofeducation.com

सांवेगिक बुद्धि जैसे पद का प्रतिपादन यद्यपि सेलोवी तथा मेयर (Salovey & Mayer, 1970) ने किया, किन्तु इसकी वैज्ञानिक एवं सैद्धान्तिक व्याख्या गोलमैन (Goleman, 1998) द्वारा दी गई है।

गोलमैन ने इस सम्प्रत्यय की व्याख्या अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'इमोशनल इण्टेलीजेन्सी : ह्वाइ इट कैन मैटर मोर देन आई क्यू' (Emotional Intelligence: Why It Can Matter More than IQ) में की है जिसमें उन्होंने स्पष्टतः यह दावा किया कि व्यक्ति को जिन्दगी में जो सफलताएँ मिलती हैं, उनका 20% ही बुद्धि-लब्धि (Intelligence Quotient) के कारण होता है और शेष 80% सफलता का कारण सांवेगिक बुद्धि (Emotional Intelligence or EQ) होता है।

सांवेगिक बुद्धि सिद्धान्त

गोलमैन (Goleman, 1994) ने सांवेगिक बुद्धि को परिभाषित करते हुए यह कहा है कि यह दूसरों एवं स्वयं के भावों को पहचानने की क्षमता तथा अपने आपको अभिप्रेरित करने एवं अपने तथा अपने सम्बन्धों में संवेग को प्रबन्धित करने की क्षमता है। गोलमैन ने अपने बुद्धि के सिद्धान्त में सांवेगिक क्षमताओं (Emotional Competencies) के सेट का भी वर्णन किया है, जो व्यक्तियों को एक-दूसरे से अलग करता है।

ऐसी सांवेगिक क्षमताओं के चार समूह हैं

1. **आत्म-अवगतता (Self-awareness)** इसमें अपने संवेगों, शक्तियों (Strengths) एवं कमजोरियों (Weaknesses) को समझने की क्षमता सम्मिलित होती है।

2. **आत्म-प्रबन्धन (Self-management)** इसमें अपने अभिप्रेरणों (Motives) को प्रबन्धित करने तथा व्यवहारों को नियमित करने की क्षमता सम्मिलित होती है।

3. **सामाजिक चेतना (Social awareness)** इसमें दूसरे लोग क्या कह रहे हैं या अनुभव कर रहे हैं और क्यों कह रहे हैं और कैसा अनुभव कर रहे हैं, को समझने की क्षमता सम्मिलित होती है।

4. **सामाजिक कौशल (Social Skills)** इसमें इस ढंग से व्यवहार करने की क्षमता सम्मिलित होती है, जिसके माध्यम से व्यक्ति दूसरों से वांछित परिणाम प्राप्त करने में सफल होता है और इस तरह वह व्यक्तिगत लक्ष्यों की प्राप्ति कर लेता है।

गोलमैन ने अपने सिद्धान्त में यह भी स्पष्ट किया है कि ये सांवेगिक क्षमताएँ व्यक्ति को अपनी जिन्दगी के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में सफलता प्रदान करने में काफी सहायता करती हैं, इसलिए गोलमैन ने अपने सांवेगिक बुद्धि के इस मॉडल को 'निष्पादन का सिद्धान्त' कहकर पुकारना पसन्द किया है।

गोलमैन के इस सिद्धान्त की सबसे बड़ी परिसीमा यह बताई गई है कि उन्होंने यह नहीं बताया है कि सांवेगिक क्षमता या सामर्थ्यता (Emotional Competency) तथा सांवेगिक व्यक्तित्व शीलगुणों (Emotional Personality Traits) में क्या अन्तर है? इसके बावजूद गोलमैन ने संसार के मनोवैज्ञानिकों से यह निश्चित रुप से प्रार्थना की है कि सांवेगिक बुद्धि की परिभाषा का सम्प्रत्यात्मक वैधता (Construct Validity) ज्ञात करने के लिए मौलिक शोध (Original Research) करें, ताकि इससे सम्बद्ध सम्भ्रान्ति (Confusion) यदि कुछ हो, तो दूर हो जाए।

www.studyofeducation.com

स्टर्नबर्ग का बुद्धि का सिद्धान्त (Theory of Intelligence of Sternberg)

स्टर्नबर्ग ने वर्ष 1985 में बुद्धि के सूचना संसाधन सिद्धान्त का दूसरा नमूना पैटर्न दिया। एक संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक (Cognitive Psychologist) के रुप में स्टर्नबर्ग का यह दावा है कि बुद्धि को आलोचनात्मक ढंग से सोचने की क्षमता के रुप में समझा जा सकता है, उन्होंने कहा कि मानव बुद्धि में अनेक तत्त्व शामिल होते हैं जो निम्नलिखित हैं

- **कूट संकेतन (Encoding)** इस चरण में व्यक्ति अपने मस्तिष्क में संगत प्राप्य सूचनाओं (Relevant Available Information) की पहचान करता है। .
- **अनुमान (Inferring)** प्राप्त सूचनाओं के आधार पर वह कुछ अनुमान लगाता है।
- **व्यवस्था (Mapping)** इस चरण में गत परिस्थिति तथा वर्तमान परिस्थिति के बीच प्राणी से सम्बन्ध जोड़ता है। .
- **उपयोग (Application)** इस चरण में व्यक्ति अनुमानित सम्बन्ध का वास्तविक उपयोग करता है।

- **अनुक्रिया (Response)** इस अन्तिम चरण में व्यक्ति समस्या का सम्भावित सबसे उत्तम समाधान ढूँढता है।

किसी मानसिक कार्य को करने में व्यक्ति जिस ढंग से सूचनाओं को संसाधित करता है, उसे ध्यान में रखते हुए स्टर्नबर्ग ने तीन उपसिद्धान्तों (Subtheories) के आधार पर बुद्धि के जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। उसे **त्रितन्त्र सिद्धान्त (Triarchic Theory)** कहा जाता है।

स्टर्नबर्ग का त्रितन्त्र सिद्धान्त (Triarchic Theory of Sternberg)

स्टर्नबर्ग के त्रितन्त्र सिद्धान्त का वर्णन निम्न है

सन्दर्भात्मक उपसिद्धान्त

इस सिद्धान्त को सन्दर्भात्मक बुद्धि (Contextual Intelligence) भी कहा जाता है। इस उपसिद्धान्त का सम्बन्ध व्यक्ति की उस क्षमता से होता है, जिसके सहारे वह विशिष्ट परिस्थितियों में समस्या के समाधान के लिए तैयार होती है। त्रितन्त्र सिद्धान्त का यह उपसिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि व्यक्ति अपने वातावरण को किस ढंग से मोड़ता है, ताकि उसकी क्षमताओं का उत्तम उपयोग हो सके तथा वह उस परिवर्तित उद्दीपक के साथ ठीक ढंग से अपने आपको समायोजित कर सके। इस उपसिद्धान्त में उन मानसिक प्रक्रियाओं की व्याख्या नहीं की जाती है। जिसे समस्या समाधान के लिए सामान्यत: आवश्यक माना जाता है।

अनुभवजन्य उपसिद्धान्त

इसे अनुभवजन्य बुद्धि (Experimental Intelligence) भी कहा जाता है। इस उपसिद्धान्त का सम्बन्ध व्यक्ति तथा उसके बाह्य वातावरण (External World) से होता है। इस तरह की बुद्धि में बदलते पर्यावरण या सन्दर्भ के साथ अनुकूलन करने की क्षमता सम्मिलित होती है, ताकि व्यक्ति उससे अधिक-से-अधिक लाभ उठा सके और अपनी कमजोरियों की क्षतिपूर्ति कर सके।

जिन व्यक्तियों में इस तरह की बुद्धि अधिक होती है, उनमें व्यावहारिक ज्ञान (Practical Wisdom) काफी अधिक होता है। ऐसे व्यक्ति तुरन्त यह समझ जाते हैं कि अमुक कार्य पर उन्हें उत्तम सफलता किस प्रकार मिलेगी और वे इसके लिए परिस्थिति में उपरोक्त परिवर्तन करके अपनी सफलता लगभग निश्चित कर लेते हैं। स्टर्नबर्ग का मत है कि विभिन्न क्षेत्रों में सफल व्यक्तियों में सन्दर्भात्मक बुद्धि अधिक होती है।

घटक उपसिद्धान्त

इसे घटकीय बुद्धि (Componential Intelligence) भी कहा जाता है। इस तरह की बुद्धि में अमूर्त चिन्तन (Abstract Reasoning) करने तथा सूचनाओं को संसाधित करने की क्षमता सम्मिलित होती है। जिन व्यक्तियों में ऐसी बुद्धि अधिक होती

www.studyofeducation.com

है, वे विश्लेषणात्मक ढंग से (Analytically) एवं आलोचनात्मक ढंग से (Critically) सोचने में निपुण होते हैं।ऐसे व्यक्तियों का प्राप्तांक किसी शैक्षिक उपलब्धि परीक्षण पर अधिक आता है और इस तरह से ऐसे व्यक्ति कुशाग्र व्यक्ति या छात्र के रूप में जाने जाते हैं।

स्टर्नबर्ग (Sternberg) ने घटक उपसिद्धान्त के अन्तर्गत निम्नांकित तीन तरह के घटक (Components) को महत्त्वपूर्ण बताया है

मेटाघटक मेटाघटक से तात्पर्य उच्च स्तरीय कार्यपालक प्रक्रियाओं (Evocutive Processes) से होता है, जिसे व्यक्ति किसी कार्य को करने में योजना बनाने, मॉनीटर करने तथा उसे कार्यरुप देने के लिए अन्तिम निर्णय लेने में उपयोग करता है।

निष्पादन घटक निष्पादन घटक से तात्पर्य उन प्रक्रियाओं से होता है, जिसे किसी कार्य; जैसे-प्रत्यक्षण, सम्प्रत्यय, पहचान आदि के करने में उपयोग किया जाता है। इस तरह से यह घटक व्यक्ति को अपने गत अनुभूति के आधार पर क्रिया करने में सहायता देता है।

ज्ञान-संग्रहण घटक ज्ञान-संग्रहण घटक से तात्पर्य उन प्रक्रियाओं से होता है, जिसे व्यक्ति नई सूचनाओं को सीखने में उपयोग करता है; जैसे-जब व्यक्ति पुराने विचारों को नए एवं मौलिक तरीकों से संगठित करना चाहता है, तो ज्ञानसंग्रहण घटक का उपयोग करता है।

स्टर्नबर्ग के अनुसार ज्ञानसंग्रहण घटक में भी तीन उपघटक (Sub-Components) अर्थात् चयनात्मक कूट संकेतन (Selective encoding), चयनात्मक संयोग (Selective Combination) तथा चयनात्मक तुलना (Selective Comparison) होते हैं। इन घटकों के सहारे व्यक्ति व्यावहारिक ज्ञान में काफी वृद्धि करता है।

उपरोक्त तीन संज्ञानात्मक प्रक्रिया के अतिरिक्त स्टर्नबर्ग का मत है कि व्यक्तियों में तीन तरह की बुद्धि होती है, जो निम्न प्रकार हैं

विश्लेषणात्मक बुद्धि इस बुद्धि से तात्पर्य किसी समस्या समाधान में समस्या को उसके विभिन्न अंशों या भागों में बाँटकर समाधान करने की क्षमता से होता है। स्टर्नबर्ग के अनुसार विश्लेषणात्मक बुद्धि सूचना संसाधन क्षमता के अनेक इकाई; यथा-किसी सूचना को संचित करने की क्षमता, उसका प्रत्याह्वान करने की क्षमता, सूचनाओं को अन्तरित करने की क्षमता, समस्याओं के बारे में निर्णय करने की क्षमता इत्यादि सम्मिलित होते हैं। उल्लेखनीय है कि इसे घटकीय बुद्धि (Componential Intelligence) भी कहा जाता है।

सृजनात्मक बुद्धि सृजनात्मक बुद्धि को अनुभवजन्य (Experimental) बुद्धि भी कहा जाता है। इस तरह की बुद्धि में बदलते पर्यावरण या सन्दर्भ के समय अनुकूलन करने की क्षमता सम्मिलित होती है साथ-ही-साथ इसमें परिस्थिति को इस प्रकार से

www.studyofeducation.com

परिवर्तित करने की भी क्षमता होती है कि व्यक्ति इससे अधिक-से-अधिक लाभ उठा सके और अपनी कमजोरियों की क्षतिपूर्ति कर सके। जिन व्यक्तियों में इस तरह की बुद्धि अधिक होती है, उनमें व्यावहारिक ज्ञान काफी अधिक होता है।

व्यावहारिक बुद्धि इस तरह की बुद्धि को सन्दर्भात्मक बुद्धि भी कहा जाता है। इसमें वैसी क्षमता सम्मिलित होती है, जिसके माध्यम से व्यक्ति अपनी जीवन में सूचनाओं को इस तरह से उपयोग करने में सफल हो पाता है जिससे उसे अधिक-से-अधिक लाभ हो पाता है। स्टर्नबर्ग का मत है कि व्यावहारिक बुद्धि निश्चित रुप से जीवन में व्यक्ति को मिलने वाली सफलताओं के बारे में पूर्वानुभास देता है, परन्तु उस तरह का सह-सम्बन्ध शैक्षिक उपलब्धियों या विश्लेषणात्मक बुद्धि से काफी होता है।

स्टर्नबर्ग के सिद्धान्त की शैक्षिक उपयोगिता

स्टर्नबर्ग सिद्धान्त इस बात की ओर संकेत करता है कि विद्यालय में शैक्षिक कार्यक्रम इस तरह से बनाए जाएँ कि उसमें तीनों प्रकार की बुद्धि का अधिकतम विकास हो सके, न कि केवल वैश्लेषिक-शैक्षिक कौशल या विश्लेषणात्मक बुद्धि का। इस सन्दर्भ में स्वयं स्टर्नबर्ग तथा उनके सहयोगियों (1998) ने एक अध्ययन के आधार पर यह बताया है कि एक जो व्यावहारिक तथा सृजनात्मक कौशल को अपने में शामिल करता है, से छात्रों में निपुणता उन पाठ्यक्रम की तुलना में अधिक प्राप्त होती है जिनमें केवल परम्परागत, वैश्लेषिक, स्मृति अध्ययन कौशल पर बल दिया जाता है। ऐसा पाठ्यक्रम,

हावर्ड गार्डनर का बुद्धि का सिद्धान्त (Theory of Intelligence of Gardner)

हावर्ड गार्डनर महोदय ने वर्ष 1983 में बुद्धि का एक नवीन सिद्धान्त प्रतिपादित किया, जिसे गार्डनर के बहु-बुद्धि सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है।

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत तीन कारकों पर बल दिया गया है, जो निम्न प्रकार हैं

- बुद्धि का स्वरुप एकाकी न होकर बहुकारकीय होता है तथा प्रत्येक बुद्धि एक-दूसरे से अलग होती है।
- प्रत्येक ज्ञान या बुद्धि एक-दूसरे से स्वतन्त्र होती है। बुद्धि के विभिन्न प्रकारों से एक-दूसरे के साथ अन्तः क्रिया करने की प्रवृत्ति पाई जाती है।
- प्रत्येक व्यक्ति में विलक्षण योग्यता होती है।

www.studyofeducation.com

हावर्ड गार्डनर ने 9 प्रकार से बुद्धि का वर्णन किया है, जो निम्न प्रकार हैं

1. भाषाई (Linguistic Intelligence) इस प्रकार की बुद्धि से भाषा सम्बन्धी क्षमता का विकास होता है।

2. तार्किक गणितीय बुद्धि (Logical Mathematical Intelligence) बुद्धि का यह अंग तार्किक योग्यता एवं गणितीय कार्यों से सम्बद्ध है।

3. स्थानिक बुद्धि (Spatial Intelligence) इस तरह की बुद्धि का उपयोग अन्तरिक्ष यात्रा के दौरान, मानसिक कल्पनाओं को चित्र का स्वरूप देने में किया जाता है।

4. शारीरिक गतिक बुद्धि (Body Kinesthetic Intelligence) इस प्रकार की बुद्धि का प्रयोग सूक्ष्म एवं परिष्कृत समन्वय के साथ शारीरिक गति से सम्बन्धित कार्यों में होता है- -नृत्य, सर्कस, व्यायाम।

5. सांगीतिक बुद्धि (Musical Intelligence) इस प्रकार के ज्ञान का उपयोग संगीत के क्षेत्र में होता है।

6. अन्तःपारस्परिक बुद्धि (Inter-Related Intelligence) इस प्रकार के ज्ञान का उपयोग सामाजिक व्यवहारों में प्रायः होता है।

7. अन्तःवैयक्तिक बुद्धि (Interpersonal Intelligence) इस प्रकार की बुद्धि का प्रयोग आत्मबोध, पहचान तथा स्वयं की भावनाओं एवं कौशल क्षमता को जानना है।

8. नैसर्गिक बुद्धि या प्राकृतिक (Natural Intelligence) इस प्रकार के ज्ञान का सम्बन्ध वनस्पति जगत्, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु या प्राणी समूह या प्राकृतिक सौन्दर्य को परखने इत्यादि में होता है।

9. अस्तित्ववादी बुद्धि (Existentialistic Intelligence) गार्डनर ने बुद्धि के इस प्रकार को वर्ष 2500 के संशोधनों में जोड़ा है। इससे आशय, मानव संसार के बारे में छिपे रहस्यों को जीवन, मृत्यु तथा मानव अनुभूति के वास्तविकता के बारे में उपयुक्त प्रश्न पूछकर जानने की क्षमता से होती है। इस तरीके की बुद्धि दार्शनिक चिन्तकों में अधिक देखने को मिलती है।

गार्डनर के अनुसार उपरोक्त तरह की बुद्धि में से प्रथम तीन कुछ ऐसी हैं जिनका मापन बुद्धि परीक्षणों द्वारा आसानी से होता है तथा अन्तिम छः का स्वरूप कुछ ऐसा है जिनमें बुद्धि के परम्परागत अर्थ को विस्तृत किया गया है तथा इन छः प्रकार की बुद्धि के समर्थन में गार्डनर ने अपने सिद्धान्त में **विकासात्मक, न्यूरोमनोवैज्ञानिक** तथा **व्यवहारात्मक** साक्ष्य प्रदान किया है।

www.studyofeducation.com

गार्डनर ने यह स्पष्ट करते हुए कहा है कि प्रत्येक सामान्य व्यक्ति में उपरोक्त नौ तरह की बुद्धि होती है, परन्तु कुछ विशेष कारणों, यथा आनुवंशिकता या प्रशिक्षण के कारण किसी व्यक्ति में कोई बुद्धि अधिक विकसित हो जाती है। ये सभी नौ तरह की बुद्धि एक-दूसरे के साथ अन्त:क्रिया करते हैं फिर भी प्रत्येक बुद्धि एक अर्थ स्वायत्त तन्त्र के रूप में कार्य करती है।

गार्डनर के सिद्धान्त की शैक्षिक उपयोगिता

गार्डनर का बुद्धि सिद्धान्त विद्यालयों में लागू करने का प्रयास वास्तव में दो बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करता है-प्रथम पाठ्यक्रम (Curriculam) तथा दूसरा निर्देश (Instruction)।

- **पाठ्यक्रम पाठ्यक्रम** तैयार करने वाले इस सिद्धान्त के मूल मन्त्र के अनुरुप अब उस क्षेत्र में अधिक ध्यान देने लगे हैं जिस पर अभी तक तुलनात्मक रुप से कम बल दिया जाता था; यथा-कल्पनात्मक लेखन, दृष्टि कला तथा स्वरलिपि (Musical Notation) इत्यादि जैसे क्षेत्रों को भी पाठ्यक्रम में शामिल करने हेतु बल दिया जाने लगा है।

- **निर्देश** निर्देश को नियोजित करने में शिक्षकों को इस बात के लिए सिद्धान्त विशेष रुप से प्रेरित करता है कि विभिन्न प्रकार की बुद्धि (कुल 9 प्रकार) के अनुरुप ज्ञान विकसित करने के लिए विशेष निर्देश दिया जाना चाहिए; यथा-अन्तर्वैयक्तिक बुद्धि से सम्बद्ध ज्ञान विकसित करने हेतु निर्देश इस बिन्दु पर केन्द्रित होना चाहिए, जिस प्रकार से साथी-संगी (Peers), क्रॉस उम्र या सहयोगी अधिगम का उपयोग करके छात्रों के अन्तर्सक्रिय कौशल (Interactive Skills) को विकसित किया जा सकता है।

www.studyeducation.com

बुद्धि का निर्धारण (Assessment of Intelligence)

बुद्धि परीक्षण एवं मानसिक आयु का वर्णन इस प्रकार है

सामान्यतः यह देखा जा सकता है कि एक व्यक्ति की बुद्धि प्राय: दूसरे व्यक्ति से भिन्न होती है। इस भिन्नता का प्रमुख कारण वंशानुक्रम एवं वातावरण है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को वंशानुक्रम एवं वातावरण की उपज माना है। व्यक्तित्व पर वंशानुक्रम एवं वातावरण के प्रभाव को निम्नलिखित विवरण द्वारा देखा जाता है

- प्रकृति एवं पोषण के साथ बुद्धि का सम्बन्ध स्पष्ट करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अनेक प्रयास किए हैं, जिनके परिणामस्वरुप, यह ज्ञात हुआ है कि बुद्धि वंश परम्परा एवं वातावरण की उपज होती है। बालक के बौद्धिक विकास

के लिए दोनों आवश्यक है। किसी भी पक्ष का नकारात्मक एवं सकारात्मक प्रभाव प्रत्यक्ष रुप से बुद्धि को प्रभावित करता है।

- बुद्धि के वितरण की दृष्टि से भी व्यक्तियों में विभिन्नता होती है। बुद्धि वितरण के सम्बन्ध में यह निश्चित सिद्धान्त है कि अधिकांश व्यक्तियों की बुद्धि औसत होती है, जबकि बहुत कम लोग प्रतिभासम्पन्न तथा बहुत कम लोग मन्द बुद्धि के होते हैं। सामान्यतः देखा जाता है कि सभी लोगों में समान बुद्धि नहीं होती। यहाँ तक कि एक ही परिवार में जन्मे दो बालकों में बौद्धिक भिन्नता पाई जाती है।

- बोयार्ड तथा मेन्यू (1981) तथा जाईविस ने अपने अध्ययन में बताया है कि जिन व्यक्तियों में सम्बन्ध पाए जाते हैं उनकी बुद्धि में भी सह-सम्बन्ध पाए जाते हैं। इसी के साथ बालक का आहार, स्वास्थ्य, उत्तेजनाओं का स्तर, परिवार का संवेगात्मक वातावरण बुद्धि निर्धारण में . प्रमुख हैं।

- परिवार की आर्थिक स्थिति का अभाव भी बालक के बौद्धिक विकास पर पड़ता है। गरीब तथा अप्रेरणात्मक वातावरण में पाले गए तथ्यों की बुद्धि की तुलना उन बालकों की बुद्धि से की गई जो प्रेरणात्मक तथा धनी वातावरण पाले पोसे गए थे और यह पाया गया कि प्रेरणात्मक वातावरण में बड़े होने वाले बच्चों की बुद्धि अधिक थी।

- बालक का जन्म किस परिवेश में हुआ है, वह किस प्रकार के लोगों के साथ रह रहा है। इन सबका प्रभाव बालक की बुद्धि पर पड़ता है। परिवेश को कमियों, प्रदूषणों, भौतिक सुविधाओं का अभाव इत्यादि कारणों से भी बुद्धि की पर्याप्त विकास नहीं हो पाता।

- बालक के जीवन में घटित घटनाओं का बालक के जीवन पर प्रभाव पड़ता है। यदि बालक के साथ अच्छा व्यवहार किया जाता है, तो उसकी बौद्धिक क्षमता उच्च एवं नकारात्मक व्यवहार की स्थिति में बौद्धिक क्षमता निम्न हो जाती है। इसके साथ किसी दुर्घटना, शारीरिक एवं मानसिक क्षति भी बौद्धिक विकास को अवरुद्ध करती है।

- बिसमैन तथा साल ने अपने अध्ययनों के आधार पर बताया है कि प्रतिकूल वातावरण का सबसे खराब प्रभाव औसत बुद्धि वाले बच्चों पर पड़ता है। यदि बालक के प्रारम्भिक जीवन में पारम्परिक संवेदनाओं एवं प्रेम की कमी हो, तो उसकी बुद्धि में कमी पाई जाती है।

अतः कहा जा सकता है कि बालक का बौद्धिक विकास उस बौद्धिक वातावरण पर निर्भर करता है जिसमें वह बड़ा होता है। सामान्यत: उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर वाले बच्चों की बुद्धि निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर वाले बच्चों से श्रेष्ठ होती है, परन्तु कभी-कभी इसका विपरीत रुप भी देखने को मिलता है जिसका प्रमुख कारण आनुवंशिकता है। अत: इन अध्ययनों द्वारा स्पष्ट होता है कि बालक के बौद्धिक विकास पर वंशानुक्रम एवं वातावरण की अन्त:क्रिया का प्रभाव पड़ता है।

www.studyofeducation.com

बुद्धि परीक्षण एवं मानसिक आयु

बुद्धि परीक्षण

- बुद्धि परीक्षण के द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व की विशेषताओं का पता लगाया जाता है। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि के प्रामाणिक मापन की विधियों की खोज की। इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम जर्मन मनोवैज्ञानिक वुण्ट का नाम आता है, जिसने वर्ष 1879 में बुद्धि के मापन के लिए मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला की स्थापना की।

- फ्रांसीसी मनोवैज्ञानिक अल्फ्रेड बिने एवं उसके साथी साइमन ने बुद्धि के मापन का आधार बच्चों के निर्णय, स्मृति, तर्क एवं आंकिक जैसे मानसिक कार्यों को माना। उन्होंने इन कार्यों से सम्बन्धित अनेक प्रश्न तैयार किए और उन्हें अनेक बच्चों पर लागू किया गया। O

- इस परीक्षण के अनुसार जो बालक अपनी आयु के अनुरुप निर्धारित सभी प्रश्नों के सही उत्तर देता है वह सामान्य बुद्धि का होता है तथा जो अपनी आयु आयु के बच्चों के लिए निर्धारित प्रश्नों के उत्तर भी दे देता है, वह उच्च बुद्धि का होता है। से ऊपर

- जो बालक अपनी आयु से ऊपर की आयु के बच्चों के लिए निर्धारित सभी प्रश्नों के सही उत्तर देता है वह सर्वोच्च बुद्धि का होता है एवं जो अपनी आयु के बच्चों के लिए निर्धारित प्रश्नों के सही उत्तर नहीं दे पाता वह निम्न बुद्धि का होता है।

- उपरोक्त मनोवैज्ञानिकों के बाद सर्वप्रथम विलियम स्टर्न ने बुद्धि के मापन के लिए बुद्धि-लब्धि (Intelligence Quotient) के प्रयोग का सुझाव दिया।

- वास्तविक आयु या कालानुक्रम आयु कालानुक्रम आयु से तात्पर्य है कि व्यक्ति कितने वर्ष का हो गया है अर्थात् उसकी जन्म से अब तक की वास्तविक आयु कितनी है।

मानसिक आयु

किसी व्यक्ति का बौद्धिक विकास अपने समान आयु वर्ग की तुलना में कितना हुआ है. इस मापन की विधि को मानसिक आयु कहते हैं।

उदाहरण यदि कोई 6 वर्ष का बालक 15 वर्ष के व्यक्ति के अनुसार दिमाग रखता या सोचता है, तो उस बालक की मानसिक आयु 15 वर्ष होगी।

www.studyproeducation.com

मानसिक आयु = बुद्धि-लब्धि x वास्तविक आयु /100

10 वर्ष का व्यक्ति जो 160 अंक लिया हुआ है, उसकी मानसिक आयु क्या होगी ?

बुद्धि-लब्धि = 160

वास्तविक आयु = 10

मानसिक आयु = बुद्धि - लब्धि x कालानुक्रमिक आयु / 100

मासिक आयु = 160x10 / 100 = 16 वर्ष

टर्मन ने सर्वप्रथम बुद्धि-लब्धांक ज्ञात करने की विधि बताई। इसके अनुसार बुद्धि-लब्धि बच्चे की मानसिक आयु को उसकी वास्तविक आयु से भाग करके, 100 से गुणा करने पर प्राप्त की जाती इसके अनुसार बुद्धि-लब्धि का सूत्र है

बुद्धि-लब्धि = मानसिक आयु/कालानुक्रमिक आयु x100

उदाहरणस्वरूप, यदि किसी बालक की मानसिक आयु 12 वर्ष और वास्तविक आयु 10 वर्ष है, तो उसकी बुद्धि-लब्धि की गणना निम्न प्रकार होगी

बुद्धि-लब्धि = मानसिक आयु / कालानुक्रमिक आयु x100 = 12 /10 x 100 = 120

श्रेष्ठ बुद्धि मनोवैज्ञानिक वेश्लर द्वारा निर्मित IQ वितरण

बुद्धि-लब्धि (IQ)	**वितरण (Distribution) या बुद्धि का स्तर**
130 या इससे ऊपर	अति श्रेष्ठ बुद्धि अर्थात् प्रतिभाशाली बुद्धि

120-129	श्रेष्ठ बुद्धि
110-119	उच्च सामान्य बुद्धि
90-109	सामान्य बुद्धि
80-89	मन्द बुद्धि
70-79	क्षीण बुद्धि
169 से नीचे	निश्चित क्षीण बुद्धि

मनोवैज्ञानिक मैरिल द्वारा निर्मित IQ वितरण

बुद्धि-लब्धि (IQ)	**वितरण (Distribution) या बुद्धि का स्तर**
140 या इससे ऊपर	अति श्रेष्ठ बुद्धि अर्थात् प्रतिभाशाली बुद्धि
120-139	श्रेष्ठ बुद्धि
110-119	उच्च सामान्य बुद्धि
90-109	सामान्य बुद्धि
80-89	मन्द बुद्धि
70-79	क्षीण बुद्धि
69 से नीचे	निश्चित क्षीण बुद्धि क्षीण

समस्या समाधान की संकल्पनाएँ (Concepts of Problem Solving)

समस्या समाधान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें समस्याओं का विश्लेषण करना एवं समाधान की खोज करना शामिल है। समस्या समाधान का अन्तिम लक्ष्य बाधाओं को नियन्त्रित करना तथा उनका सबसे सटीक एवं प्रभावी समाधान खोजना है। समस्या समाधान के अर्थ को निम्नलिखित परिभाषाओं द्वारा समझा जा सकता है

www.studyofeducation.com

बैरॉन के अनुसार, "समस्या समाधान में विभिन्न अनुक्रियाओं को करने या उनमें से चुनने का प्रयास सम्मिलित होता है, जिससे वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सके।"

विटिंग एवं विलियम्स ||| के अनुसार, "समस्या समाधान का अर्थ होता है, बाधाओं को दूर करने तथा लक्ष्यों की ओर पहुँचने के लिए चिन्तन प्रक्रियाओं का उपयोग करना।"

इन परिभाषाओं में सम्मिलित तथ्य पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि समस्या समाधान एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति समस्या की वर्तमान अवस्था से लक्ष्य अवस्था की ओर जाता है। समस्या से तात्पर्य एक ऐसी अवस्था से होता है, जिसमें व्यक्ति कुछ चाहता है, परन्तु वह आसानी से प्राप्त नहीं होता है। मैटलिन के अनुसार समस्या समाधान के तीन महत्त्वपूर्ण पहलू हैं

1. **मौलिक अवस्था** मौलिक अवस्था से तात्पर्य उस अवस्था से होता है, जो समस्या के सामने आने पर प्रारम्भ में उत्पन्न होती है।

2. **लक्ष्य अवस्था** लक्ष्य अवस्था से तात्पर्य उस अवस्था से होता है, जो लक्ष्य पर पहुँचने अर्थात् समस्या समाधान होने के बाद उत्पन्न होती है।

3. **नियम** नियम से तात्पर्य उस कार्य विधि से होता है जिसे व्यक्ति समस्या की मौलिक अवस्था से लक्ष्य अवस्था तक पहुँचने में अपनाता है।

www.studyofeducation.com

समस्यात्मक परिस्थिति (Problematic Situation)

एक समस्यात्मक स्थिति वह है जिसमें प्राणी को विभिन्न प्रकार के उद्दीपक संकेत प्राप्त होते हैं, परन्तु वह विविध प्रकार की अनुक्रियाएँ करने पर भी अपने लक्ष्य की ओर प्रगति नहीं कर पाता। ऐसी स्थिति में प्राणी एक असामान्य दशा में होता है।

गिडार्ड के अनुसार, "जब एक व्यक्ति ऐसी परिस्थिति का सामना करता है जिसमें वह तुरन्त तथा कोई उचित व्यवहार नहीं कर पाता तो उसके लिए एक समस्या उत्पन्न हो जाती है।" विशेष रुप से समस्या एक महत्त्वपूर्ण अनुक्रिया होती है।"

एण्ड्रैस ने यह प्रश्न किया है कि किन परिस्थितियों में ऐसी समस्या उत्पन्न होती है? इसका उत्तर देते हुए उन्होंने विचार प्रकट किया कि "परिचित परिस्थितियों में इसका कोई उत्तर नहीं है, क्योंकि प्रयोज्य पहले सीखी हुई आदतें उसको एक लक्ष्य तक पहुँचने के लिए सहायक होती हैं।" इससे स्पष्ट होता है कि केवल नवीन परिस्थितियों में ही समस्याएँ उत्पन्न होती है और व्यक्ति को लक्ष्य तक पहुँचने के पथ की जानकारी नहीं होती। उसे इस प्रश्न के उत्तर की जानकारी नहीं होती कि वह कैसे उस चीज को पाए जिसकी

उसको इच्छा है। प्रत्येक समस्या के तीन लक्षण पाए जाते हैं। मौलिक अवस्था उस अवस्था का वर्णन करती है जब समस्या का प्रारम्भ होता है। लक्ष्य अवस्था उस समय पाई जाती है, जब समस्या का समाधान प्राप्त हो जाता है "

जबकि नियम उन प्रतिबन्धों का वर्णन करता है जिनका अनुसरण करके मौलिक अवस्था से लक्ष्य अवस्था की ओर आगे बढ़ते हैं समस्या समाधान व्यवहार का तात्पर्य प्राणी के उन सार्थक प्रयासों से है, जिनके द्वारा वह उपयुक्त विधियों तथा साधनों का प्रयोग करके लक्ष्य प्राप्त करता है। जॉनसन के अनुसार, समस्या समाधान व्यवहार के अनेक लक्षण हैं

- प्राणी के व्यवहार में लक्ष्योन्मुखता पाई जाती
- प्राणी के व्यवहार में निरन्तरता पाई जाती है।
- लक्ष्य प्राप्ति के बाद प्राणी के व्यवहार में परिवर्तन पाया जाता है।
- प्राणी एक ही समस्या के समाधान के लिए एक ही नहीं, वरन् अनेक अनुक्रियाएँ करता है।
- समाधान के लिए किए गए एक अनुक्रिया के असफल हो जाने पर प्राणी दूसरी अनुक्रिया करता है।

समस्यात्मक स्थिति के घटक

एण्ड्रैस के अनुसार, किसी भी समस्यात्मक स्थिति के छः घटक होते हैं प्राणी के सामने एक-या-एक से अधिक लक्ष्य होते हैं।

- प्राणी को विभिन्न प्रकार के उद्दीपक संकेत प्राप्त होते हैं।
- वह लक्ष्य प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार की अनुक्रियाएँ करता है।
- समस्यात्मक परिस्थिति का प्रत्येक संकेत उस परिस्थिति के घटित होने वाली अनेक अनुक्रियाओं के साथ पुर्वानुभव के कारण अलग-अलग प्रबलता के साथ अनुबन्धित होता है।
- प्राणी को शुद्ध या अशुद्ध अनुक्रिया के बीच ज्ञान प्राप्त होता रहता है।
- परिणाम की जानकारी कराकर हम सही ढंग से प्रतिपूर्ति प्रदान करा देते हैं।

समस्या समाधान की अवस्थाएँ

जब समस्या जटिल होती है, तो व्यक्ति समाधान में अधिक समय लेता है, जिसमें अनेक संज्ञात्मक क्रियाएँ एक विशेष अनुक्रम में घटित होती हैं। समस्या समाधान में अनेक घटक प्रक्रियाएँ पाई जाती हैं। जिनमें चार प्रक्रियाएँ अति विशिष्ट हैं

www.studyofeducation.com

तैयारी

तैयारी का तात्पर्य समस्या को समझने की तैयारी से है। इस प्रथम अवस्था में व्यक्ति समस्या से सम्बन्धित समस्त सार्थक सूचनाओं का संकलन समाधान प्राप्त करने के लिए करता है। एक ही समस्या की तैयारी में लगा हुआ समय प्रयास व्यक्ति से व्यक्ति तथा समस्या के लिए भिन्न होता है। इसमें निम्नलिखित क्रियाएँ पाई जाती है

- समस्या का तादात्मीकरण।
- समाधान कसौटी का तादात्मीकरण।
- समाधान प्रयासों पर आरोपित प्रतिबन्धों का निर्धारण।
- पूर्व अनुभव के आधार पर समस्या की तुलना।
- परिणामतः समस्या में प्रतिनिधान की रचना।

विकल्प

सम्पूर्ण समस्या को अनेक उप-समस्याओं में विभाजित करना, कुछ सूचनाओं की उपेक्षा करके सरल समस्या का निर्माण, शतरंज समस्या के समाधान के लिए उपरोक्त क्रियाओं के अनुसार मानव प्राणी को निम्नलिखित क्रियाएँ करनी होगी।

शतरंज बोर्ड पर पाए जाने वाले टुकड़ों की स्थिति।
दो गतियों (काला और सफेद) लक्ष्य की प्राप्ति।
वे अवरोध जो समाधान प्राप्त करने के लिए खेल के नियमों के अनुसार गतिशील होते हैं, के बारे में ज्ञान प्राप्त करना।

www.studyofeducation.com

उत्पादन कियाएँ

किसी समस्या के समाधान में विभिन्न क्रियाएँ पाई जाती हैं

- दीर्घकालीन स्मृति से तथ्यों एवं प्रक्रियाओं की पुनःप्राप्ति।
- वातावरण में उपलब्ध सूचनाओं की छानबीन।
- विषय-वस्तु पर संक्रिय करना।
- अल्पकालिक स्मृति में पूर्व संक्रियाओं के उत्पादों का अनुरक्षण।
- बाद में उपयोग करने के लिए दीर्घकालिक स्मृति में सूचनाओं का संग्रहण। इस प्रकार कहा जा सकता है कि उत्पादन में उपरोक्त क्रियाओं की सम्भावना पाई जाती है।

उत्पाद एक महत्त्वपूर्ण समाधान है। सरल समस्या का समाधान दीर्घकालिक स्मृति से शुद्ध समाधान की पुनः प्राप्ति है। जबकि जटिल समस्याओं; जैसेसम्मेलन समस्या शतरंज आदि के लिए समाधान व्यपदेशों की आवश्यकता होती है। समाधान विधियों के लिए दो विधियों का प्रयोग किया जाता है एल्गोरिदम तथा यूरिस्टिक। एल्गोरिदम वे विधियाँ हैं, जिनका प्रयोग किया तो समाधान प्राप्त करने की गारण्टी होती है।

निर्णय

यह सोपान अपेक्षाकृत सरल है। यद्यपि समाधान के प्रारम्भ में निर्णय जटिल एवं अनिश्चित होता है। इसमें उत्पन्न समाधानों का मूल्यांकन होता है। इसमें निम्नलिखित क्रियाएँ पाई जाती हैं

- उत्पादित समाधान की कसौटी से तुलना।
- पर्याप्त समेल उपलब्धता के बारे में निर्णय लेने के लिए नियम का चयन।
- उत्पाद यह निर्णय है कि समस्या का समाधान हो गया है अथवा अत्यधिक कार्य की आवश्यकता है।

उद्भेदन

समस्या समाधान के लिए उपरोक्त अवस्थाएँ तार्किक रूप से आवश्यक है, परन्तु उद्भेदन को चौथी अवस्था के रूप में स्वीकार किया गया है। इस अवस्था के अन्तर्गत जब व्यक्ति अपने प्रारम्भिक प्रयास में समाधान प्राप्त करने में असफल हो जाता है, तो वह समस्या से अपने ध्यान को हटाकर दूसरे कामों में लगा देता है और जब थोड़ी देर बाद पुनः अपने ध्यान को उस समस्या पर फिर लगा देता है, तो वह कभी-भी समाधान प्राप्त करने में असफल नहीं होता है। इस प्रकार उद्भेदन के द्वारा समस्या का समाधान होता है।

www.studyofeducation.com

समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारक या अवरोधक

मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि अनेक ऐसे कारक हैं, जिनका समस्या समाधान पर स्पष्ट और प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। इन्हें निम्न बिन्दुओं से समझा जा सकता है

कार्यात्मक सरलता (Functional Fixedness) कार्यात्मक सरलता से समस्या समाधान में बाधा उत्पन्न होती है, क्योंकि इसमें व्यक्ति किसी वस्तु के विशेष कार्य या उपयोगिता के बारे में एक अटल विचार बना लेता है और जिसके कारण व्यक्ति उस वस्तु का दूसरे ढंग से उपयोग या समस्या समाधान नहीं कर पाता। .

प्रशिक्षण (Training) प्रशिक्षण का समस्या समाधान पर प्रयास बहुत ही व्यापक होता समस्या समाधान की उपरोक्त विधि द्वारा प्रशिक्षण देकर समस्या समाधान को आसान बनाया जा सकता है। इस सम्बन्ध में विभिन्न शोधों द्वारा स्वतः शोध अन्वेषण (Heuristic Exploration) को उत्तम विधि माना गया है।

समस्या का स्वरूप (Nature of Problem) समस्याओं के स्वरूप द्वारा भी समस्या समाधान प्रभावित होता है। समस्या का स्वरुप यदि स्पष्ट है तो समाधान आसान होता है, परन्तु यदि समस्या अस्पष्ट प्रकार की है तो समस्या समाधान में जटिलता आ जाती है।

मानसिक वृत्ति (Mental Set) समस्या समाधान में कार्यात्मक अटलता जहाँ वस्तु की किसी विशेषता से सम्बन्धित होती है, तो दूसरी समस्याओं का समाधान भी वह उसी विधि से करना चाहता है, जबकि उसे सरल व नवीन विधि की आवश्यकता होती है।

दुश्चिन्ता (Anxiety) कुछ समस्याएँ ऐसी होती हैं, जिनका लक्ष्य अवस्था व्यक्ति में चिन्ता उत्पन्न कर देता है। जब अधिक मात्रा में व्यक्ति में चिन्ता उत्पन्न हो जाती है, तो इसका समस्या समाधान पर बुरा प्रभाव पड़ता है और व्यक्ति समस्या समाधान ठीक ढंग से नहीं कर पाता।

अवधान विस्तार (Span of Attention) किसी भी समस्या का समाधान अच्छी तरह से तभी किया जा सकता है, जब समस्या के सभी पहलुओं को अच्छी तरह से समझकर अधिक महत्त्वपूर्ण तथा कम महत्त्वपूर्ण में विभाजित कर उन पर विचार किया जाए। ऐसा नहीं करने पर समस्या उचित समाधान तक नहीं पहुँच पाती।

www.studyofeducation.com

समस्या समाधान की विधियाँ या उपाय

समस्या समाधान की दो विधियाँ हैं, जो काफी महत्त्वपूर्ण हैं

याद्दच्छिक अन्वेषण विधि

इस विधि में व्यक्ति समस्या के समाधान के लिए प्रयत्न एवं त्रुटि उपायों का सहारा लेता है। दूसरे शब्दों में समस्या के समाधान के लिए वह एक तरह का याद्दच्छिक अन्वेषण करता है, जो दो प्रकार का होता है-अक्रमबद्ध याद्दच्छिक अन्वेषण तथा क्रमबद्ध याद्दच्छिक अन्वेषण। अक्रमबद्ध याद्दच्छिक अन्वेषण में व्यक्ति समस्या के समाधान के लिए सभी तरह की सम्भावित अनुक्रियाओं को करता है, परन्तु ऐसा करने से वह कोई निश्चित क्रम को नहीं अपनाता है और न ही पहले किए गए प्रयासों का कोई रिकॉर्ड ही रखता है। क्रमबद्ध याद्दच्छिक अन्वेषण में व्यक्ति समस्या समाधान के लिए सम्भावित अनुक्रियाओं को एक क्रम में करता है तथा पहले की गई अनुक्रियाओं का एक रिकॉर्ड भी रखता है जिससे वह पहले की गलत अनुक्रियाओं को पुनः दोहरा सके। क्रमबद्ध याद्दच्छिक अन्वेषण द्वारा समस्या के समाधान में तुलनात्मक रुप से समय अधिक लगता है।

स्वतः शोध अन्वेषण विधि

इस विधि में व्यक्ति समस्या का समाधान करने के लिए सभी विकल्पों को नहीं ढूँढता है, बल्कि उन्हीं विकल्पों का चयन करके समस्या समाधान करने की कोशिश करता है, जो उन्हें संगत प्रतीत होते हैं। रिटमैन के अनुसार, ऐसी अन्वेषण विधि एक लघु नियम के समान होती है, जिससे किसी समस्या का समाधान हो जाता है। एल्गोरिदम की तुलना में इसमें कम समय लगता है, परन्तु जहाँ एल्गोरिदम में समस्या समाधान की गारण्टी होती है, वहाँ स्वतः शोध विधि में समाधान की गारण्टी तो नहीं होती है, परन्तु समाधान निकल आने की सम्भावना अधिक बनी होती है। स्वत:अन्वेषण विधि के तहत निम्नांकित तीन प्रविधियों पर सर्वाधिक प्रकाश डाला गया है

साधन-साध्य विश्लेषण

साधन-साध्य विश्लेषण एक लोकप्रिय उपाय या विधि है, जिसका उपयोग व्यक्ति किसी समस्या के समाधान प्राय: करता है। इस तरह की विधि में व्यक्ति समस्या को अनेक छोटी-छोटी उप-समस्या में बाँट देता है। इसमें प्रत्येक उप-समस्या का समाधान करके समस्या का मौलिक अवस्था तथा लक्ष्य अवस्था के बीच के अन्तर को कम कर दिया जाता है अर्थात् समस्या एवं समाधान में उनकी दूरी को कम कर दिया जाता है।

www.studyofeducation.com

पश्चगामी अन्वेषण

यह एक ऐसा स्वतः शोध अन्वेषण है, जिसमें समस्या समाधान करने के ख्याल से व्यक्ति लक्ष्य अवस्था से अपना प्रयास प्रारम्भ करता है और पश्चगामी दिशा में कार्य करते हुए प्रारम्भिक मौलिक अवस्था तक आता है। इस तरह का अन्वेषण निम्नांकित दो परिस्थितियों में अधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ है

1. जब समस्या का स्वरुप कुछ ऐसा होता है जहाँ उसकी लक्ष्य अवस्था में मौलिक अवस्था की तुलना में अधिक सूचनाएँ सम्मिलित होती हैं।

2. जब समस्या का स्वरूप कुछ ऐसा होता है कि उसके समाधान के लिए प्रयास अग्रगामी तथा पश्चगामी दोनों ही दिशा में सम्भव है।

योजना विधि

पहलू की इस विधि द्वारा समस्या के समाधान में व्यक्ति समस्या को मुख्य रुप से दो भागों में बाँट देता है-साधारण पहलू तथा जटिल पहलू। पहला व्यक्ति साधारण पहलू का समाधान करता है तथा जटिल पहलू को छोड़ देता है। उसके बाद वह जटिल पहलू की ओर अग्रसर होता है और फिर उसका समाधान करता है। योजना विधि का एक सामान्य प्रकार साद्दश्यता है। साद्दश्यता समस्या के समाधान को ही वर्तमान समस्या के समाधान में एक सहायता के रुप में उपयोग किया जाता है।

गहन चिन्तन (Critical Thinking)

गहन चिन्तन में व्यक्ति किसी वस्तु, घटना या तथ्य की सच्चाई को स्वीकार करने से पहले उसके गुण-दोष की परख कर लेता है। हमारे समाज में कुछ व्यक्ति तो ऐसे भी होते हैं जिन्हें किसी घटना या वस्तु के विषय में जो कुछ भी कहा जाता है, उसे वे सही समझकर मान लेते हैं। तब ऐसा कहा जाता है कि इस तरह के व्यक्ति में चिन्तन की शक्ति कम है। दूसरी ओर कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जिन्हें किसी घटना या वस्तु के विषय में कहने से पहले वे उसके गुण-दोष परखते हैं और तभी उसे सही या गलत मानते हैं। व्यक्ति में इस प्रकार के चिन्तन को गहन चिन्तन कहते हैं।

चिन्तन एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है, जो सभी प्राणियों में होती है। इसे मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न ढंग से परिभाषित किया है। कुछ विद्वानों ने इसे वातावरण से मिलने वाली सूचनाओं का मानसिक जोड़-तोड़ बताया है तो कुछ ने इसे एक ऐसी मध्यस्थ प्रक्रिया माना है जो किसी समस्या (या उद्दीपन) तथा उसका समाधान अर्थात् सही अनुक्रिया के मध्य या बीच में होती है।

कागन तथा हेमैन के अनुसार, "चिन्तन की सर्वश्रेष्ठ एवं व्यापक परिभाषा दी है। इनके अनुसार, प्रतिमाओं, प्रतीकों, सम्प्रत्ययों, नियमों एवं अन्य मध्यस्थ इकाइयों के मानसिक जोड़-तोड़ को चिन्तन कहा जाता है।"

सिलवरमैन के अनुसार, "चिन्तन एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है, जो हम लोगों को उद्दीपन तथा घटनाओं के प्रतीकात्मक चित्रण द्वारा किसी समस्या का समाधान करने में सहायता करता है।"

चिन्तन के प्रकार

मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तन को अनेक भागों में बाँटकर अध्ययन किया है। जिम्बाडों तथा रुक (1977) ने चिन्तन को निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया है

www.studyofeducation.com

1. स्वली चिन्तन (Autistic Thinking) स्वली चिन्तन वैसे चिन्तन को कहा जाता है जिसमें व्यक्ति अपने काल्पनिक विचारों एवं इच्छाओं की अभिव्यक्ति करता है; जैसे-स्वप्न, स्वप्नचित्र तथा अभिलाषाकल्पित चिन्तन इत्यादि सभी स्वली चिन्तन के उदाहरण हैं। इस तरह के चिन्तन की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इससे किसी समस्या का समाधान नहीं हो पाता।

2. यथार्थवादी चिन्तन (Realistic Thinking) यथार्थवादी चिन्तन वैसे चिन्तन को कहा जाता है जिसका सम्बन्ध वास्तविकता से होता है और उसके सहारे व्यक्ति किसी समस्या का समाधान कर पाता है। इस तरह के चिन्तन को विवेचन या तर्कणा भी कहा जाता है; जैसे-यदि कोई व्यक्ति कार में सफर कर रहा है तथा कार अचानक रुक जाती है तो ऐसी समस्या उत्पन्न होने पर व्यक्ति अनेक तरह की बातें सोचना प्रारम्भ कर देता है; जैसे-कहीं पेट्रोल तो समाप्त नहीं हो गया, कहीं इंजन में कोई खराबी तो नहीं आ गई इत्यादि यथार्थवादी चिन्तन के उदाहरण हैं।

मनोवैज्ञानिकों ने यथार्थवादी चिन्तन को भी तीन वर्गों में विभाजित किया है

www.studyofeducation.com

(i) अभिसारी चिन्तन (Convergent Thinking) इस तरह के चिन्तन को निगमनात्मक (Deductive) चिन्तन कहते हैं। इस चिन्तन में व्यक्ति दिए गए तथ्यों के आधार पर कोई सही निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास करता है; जैसे-यदि आपसे पूछा जाए कि 5 में 2 से गुणा करने पर क्या आएगा तो इसका उत्तर देने में निहित चिन्तन अभिसारी चिन्तन का उदाहरण होगा।

(ii) सृजनात्मक चिन्तन (Creative Thinking) इस तरह के चिन्तन को आगमनात्मक (Inductive) चिन्तन कहा जाता है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति दिए गए तथ्यों में अपनी से कुछ नया जोड़कर एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचता है; जैसे-यदि किसी व्यक्ति से 'कलम' का असाधारण उपयोग बतलाने को कहा जाए, तो वह व्यक्ति चिन्तन करके अपनी ओर से कुछ असाधारण बात कलम के उपयोग के बारे में बताएगा। यह सृजनात्मक चिन्तन के उदाहरण हैं।

(iii) आलोचनात्मक चिन्तन (Evaluative Thinking) इस तरह के चिन्तन में व्यक्ति किसी वस्तु, घटना या तथ्य की सच्चाई को स्वीकार करने से पहले उसके गुण एवं दोष की परख कर लेता है। समाज तो ऐसे होते हैं जिन्हें किसी घटना या वस्तु के बारे में जो कुछ भी कहा जाता है, उसे वे सही समझकर मान लेते हैं। तब ऐसा कहा जाता है कि इस तरह के व्यक्ति में आलोचनात्मक चिन्तन की शक्ति कम है। दूसरी ओर, कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिन्हें किसी घटना या वस्तु के बारे में कहने पर पहले वे उसका गुण-दोष परखते हैं और तब उसे सही या गलत मानते हैं, तो व्यक्ति में इस तरह के चिन्तन को ही आलोचनात्मक चिन्तन कहा जाता है। कुछ व्यक्ति

गहन चिन्तन के साधन

मनोवैज्ञानिकों ने समालोचनात्मक चिन्तन प्रक्रिया का विश्लेषण कर यह निष्कर्ष निकाला है कि चिन्तन की यह प्रक्रिया कुछ मुख्य साधनों के माध्यम से तेजी से होती है। इन साधनों का वर्णन निम्नलिखित है

प्रतिमा प्रतिमा समालोचनात्मक चिन्तन का प्रमुख साधन है। पूर्व अनुभूतियों की अस्पष्ट रुप से पुनरुत्पत्ति को ही प्रतिमा की संज्ञा दी जाती है। पहले मनोवैज्ञानिकों का विश्वास था कि चिन्तन में व्यक्ति किसी प्रकार की प्रतिमा का .

समाधान परन्तु प्रयोग नहीं करता; जैसे-गाल्टन तथा उर्जबर्ग के स्कूल मनोवैज्ञानिकों ने अनेक वैज्ञानिक तथा गणितज्ञ जो अपने क्षेत्र की समस्याओं के के लिए काफी चिन्तन करते हैं, के अध्ययन में यह बताया कि चिन्तन करते समय उनके मन में किसी प्रकार की प्रतिमा नहीं आती है, परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोगों से यह स्पष्ट हो गया है कि चिन्तन में प्रतिमाएँ होती हैं। यद्यपि अधिकतर दृष्टि प्रतिमाएँ ही होती हैं, कभी-कभी श्रवण प्रतिमाएँ, घ्राण प्रतिमाएँ एवं स्पर्श जन्य आदि प्रतिमाएँ भी होती हैं।

भाषा भाषा समालोचनात्मक चिन्तन का दूसरा प्रमुख साधन है। भाषा एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा शब्दों एवं वाक्यों का प्रयोग करके हम दूसरी से अपने आलोचनात्मक चिन्तन से सम्बन्धित विचार कह पाते हैं

दूसरों के कहे वाक्यों को समझ पाते हैं। समालोचनात्मक चिन्तन करते समय व्यक्ति भाषा का प्रयोग करता है। कभी-कभी इसका स्वरुप आन्तरिक भाषण अथवा 'स्वयं से बातचीत' करने का होता है। अनेक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि किसी समस्या का समाधान करते समय चिन्तन करने वाले व्यक्ति की वागीन्द्रिय जैसे जीभ तथा स्वर यन्त्र में कुछ पेशीय संकुचन होते हैं; जैसे वह व्यक्ति स्वयं से बोल रहा हो। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो समालोचनात्मक चिन्तन करते समय जोर-जोर से बोलते हैं। अतः स्पष्ट है कि भाषा समालोचनात्मक चिन्तन का मुख्य साधन है।

www.studyeducation.com

सम्प्रत्यय समालोचनात्मक चिन्तन में व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार के सम्प्रत्ययों का प्रयोग करता है। प्रत्येक वस्तु या घटना का एक सम्प्रत्यय व्यक्ति के मन में होता है जो चिन्तन करने में हमारी सहायता करता है। जैसे यदि किसी विद्यार्थी से पूछा जाए कि इन बातों के आधार पर उनके मन में कौन-सी धारणाएँ या सम्प्रत्यय आता है-चार पैर, एक पूँछ, जंगली, दहाड़ना।

इन गुणों के आधार पर विद्यार्थी इस निष्कर्ष पर पहुँचता है-शेर। यहाँ 'शेर' एक सम्प्रत्यय का उदाहरण है। स्पष्ट है कि सम्प्रत्यय वस्तुओं या घटनाओं के समूह से सामान्य गुणों का एक पृथक्करण है। इस प्रकार के सम्प्रत्यय से किसी वस्तु या घटना के विषय में चिन्तन करने में तेजी आती है।

प्रतिज्ञप्ति समालोचनात्मक चिन्तन एक निष्क्रिय प्रक्रिया न होकर एक सक्रिय प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति बाह्य वातावरण की आन्तरिक छवि में जोड़-तोड़ करता है। प्रायः चिन्तन में व्यक्ति एक सम्प्रत्यय को दूसरे सम्प्रत्यय से तथा सम्प्रत्यय की एक विशेषता को पूरे सम्प्रत्यय से जोड़ता है। है। चूँकि व्यक्ति भाषा का धनी होता है। अतः ये सभी संज्ञानात्मक क्रियाएँ एक ऐसे वाक्य का रुप ले लेती हैं जिसमें एक सम्प्रत्यय दूसरे सम्प्रत्यय से सम्बन्धित होता है तथा साथ-साथ एक अलग कथन भी बन जाता है।

इसे ही मनोवैज्ञानिकों ने प्रतिज्ञप्ति कहा है जो चिन्तन का विशेष महत्त्वपूर्ण साधन माना गया है; जैसे-आगरा में ताजमहल है, में दो सम्प्रदायों के बीच एक सम्बन्ध का पता चल रहा है। इस उदाहरण में आगरा तथा ताजमहल दो सम्प्रत्यय हैं जिसमें एक विशेष सम्बन्ध को दिखाया गया है। अतः स्पष्ट होता है कि व्यक्ति चिन्तन में प्रज्ञप्ति का उपयोग करता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि समालोचनात्मक चिन्तन के अनेक साधन हैं, जिनका प्रयोग कर व्यक्ति अपनी चिन्तन प्रक्रिया को अधिक मजबूत एवं सुस्पष्ट बनाता है।

मेटासंज्ञान (Metacognition)

www.studynoteducation.com

मेटासंज्ञान पद के उद्भव का श्रेय जॉन फ्लेवेल्ल (John Flavell, 1979) । को जाता है जिन्होंने इस क्षेत्र में अनेक शोध किए हैं। इन्होंने संज्ञानात्मक विकास के सन्दर्भ में मेटासंज्ञान का विशेष रूप से अध्ययन किया है।
फ्लेवेल्ल के अनुसार, मेटासंज्ञान से तात्पर्य 'संज्ञानात्मक परिघटनाओं के बारे में संज्ञान से होता है। दूसरे शब्दों में मेटासंज्ञान से आशय संज्ञान के में संज्ञान से या 'जानना के बारे में जानने (Knowing about Knowing) से है। शोधकर्ताओं के अनुसार, संज्ञान के अनेक पक्षों/पहलुओं को मेटा पद के साथ जोड़ा जा सकता है; जैसे-मेटाबोध (Metacomprehension), मेटाभाषा (Metalanguage), मेटास्मृति (Metamemory) आदि। शिक्षा मनोवैज्ञानिकों तथा विकासात्मक मनोवैज्ञानिकों ने मेटासंज्ञान में मेटास्मृति पर सर्वाधिक बल दिया है।

मेटास्मृति (Metamemory)

मेटास्मृति से तात्पर्य स्मृति के बारे में ज्ञान से होता है। मेटास्मृति में छात्र यह सिमझते हैं कि उनकी स्मृति किस तरह से कार्य करती है साथ ही वे स्मृति के अन्य पहलुओं का भी ज्ञान प्राप्त करते हैं; यथा-मेटास्मृति में शिक्षार्थी यह समझ पाते हैं कि प्रत्यभिज्ञान परीक्षण (Recognition Test) प्रत्याहवान परीक्षण (Recall Test) से उत्तम होता है, छात्र की वह क्षमता भी इसमें शामिल होती है, जिसके माध्यम से वह जाँच कर पाते हैं कि अगले सप्ताह होने वाली परीक्षा के लिए वे कितनी तैयारी कर चुके हैं एवं किस प्रकार के अभ्यास से स्मृति को उन्नत बनाया जा सकता है।

मेटास्मृति के विभिन्न पहलू

शिक्षा मनोवैज्ञानिकों द्वारा मेटास्मृति के तीन पहलुओं पर अधिक बल दिया गया है, जिनका वर्णन इस प्रकार है

ज्ञान मेटासंज्ञानात्मक ज्ञान में स्मृति के बारे में किया गया घोषणात्मक ज्ञान होता है तथा इसमें अस्पष्ट तथा कभी-कभी गलत विश्वास भी शामिल होते हैं; जैसे-हर्डजोग तथा हुल्टस के अनुसार, कुछ व्यक्तियों को यह विश्वास होता है कि दृढ़ अवस्था में युवावस्था की तुलना में सीखने एवं स्मरण दोनों की ही क्षमता में कमी आई है। स्मृति के सम्बन्ध में व्यक्ति के ज्ञान की माप स्मृति से सम्बन्धित कुछ प्रश्नों को पूछकर किया जाता है।

मॉनिटरिंग मॉनिटरिंग से तात्पर्य अधिगम तथा पुनः प्राप्ति के वर्तमान पहलू या जारी प्रगति के मूल्यांकन से होता है; जैसे-शिक्षार्थी परीक्षा की तैयारी करते समय इस बात का मूल्यांकन कर सकता है कि प्रत्येक अध्याय से कितने पाठ या प्रश्नों को वह याद कर पाया है तथा परीक्षा देते समय भी इस बात का मूल्यांकन कर सकता है कि उसके द्वारा दिए गए उत्तरों में से कितना सही है। स्मृति मॉनिटरिंग की जाँच शिक्षार्थी द्वारा किसी सूचना या पाठ को सीखते समय या उसका पुनः प्राप्ति (Retrieval) करते समय उन्हीं के द्वारा उसके बारे में किया गया आत्मनिर्णय के आधार पर होता है।

नियन्त्रण नियन्त्रण से आशय जारी अधिगम तथा पुन: प्राप्ति प्रक्रियाओं के नियमन से होता है। उदाहरणस्वरुप-जब छात्र किसी पाठ को यह सोचकर पढ़ना बन्द कर देते हैं कि उसे वह पाठ अच्छी तरह याद है या जब छात्र उस प्रश्न के उत्तर की पुनः प्राप्ति जारी रखता है जिसके प्रारम्भिक प्रयासों में पुनः प्राप्ति नहीं पाई थी, तो यह मेटास्मृति के नियन्त्रण पहलू का उदाहरण होगा। नियन्त्रण का मापन प्रायः छात्रों को अपने अधिगम को नियमित करने की छूट देकर तथा ऐसे नियमन के प्रतिफल की जाँच करके अर्थात् आसान सामग्रियों की तुलना में कठिन सामग्रियों के अध्ययन करने में लगे समय तथा स्मृति से सूचनाओं का प्रत्याह्वान करने में वह कितने समय तक निरन्तर बना रहता है आदि की जाँच करके किया जाता है।

www.studyofeducation.com

मेटासंज्ञानात्मक मॉडल

प्रेस्सली, बोर्कोवस्की तथा स्कनिडर ने अपने शोधों के आधार पर एक विशेष मेटासंज्ञानात्मक मॉडल का निर्माण किया, जिसे उत्तम सूचना संसाधन मॉडल (Good Information Processing Model) के नाम से जाना जाता है। इस मॉडल के अनुसार बच्चों में उत्तम संज्ञान कई अन्तक्रियात्मक कारकों तथा रणनीति, अन्तर्वस्तु का ज्ञान, अभिप्रेरण तथा मेटासंज्ञान आदि परिणाम होता है। इस मॉडल के तहत् निम्नलिखित तीन चरणों से होकर बच्चों में उत्तम संज्ञान विकसित होता है

- शिक्षकों तथा माता-पिता के द्वारा बच्चों को विशेष तरह की रणनीति सिखलाई जाती है। विशिष्ट ज्ञान को प्राप्त करने हेतु बच्चे इन रणनीतियों की विशेषताओं एवं उनके सम्भावित प्रभावों के बारे में जान पाते हैं। सामान्य तौर पर यह पाया गया है कि जब बच्चों तथा घरेलू तथा स्कूली वातावरण बौद्धिक रूप से काफी उत्तेजनापूर्ण होता है, तो वे अधिक विशिष्ट रणनीतियों को सीख लेते हैं तथा उनका लाभ उठा पाते हैं।

- शिक्षक किसी विशेष क्षेत्र में उपयोग में लाए जाने वाले बहुत सारे रणनीतियों की समानता एवं विषमता को छात्रों को दिखाकर उनके सम्बन्धात्मक ज्ञान को उन्नत बनाने में सार्थक भूमिक निभा सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में विभिन्न रणनीतियों के सामान्य विशेषताओं पर छात्र ध्यान देने हेतु अभिप्रेरित हो जाते हैं। इस अन्तिम चरण में छात्र को विभिन्न तरह के रणनीतियों का सपष्ट लाभ अनुभव होने लगता है जिससे उसमें सामान्य रणनीति ज्ञान विकसित होता है।

मेटासंज्ञानात्मक रणनीति तथा आत्म-नियमन

www.studyforeducation.com

मेटासंज्ञान तथा आत्म-नियमन को मजबूत करने के लिए अनेक तरीकों का सुझाव दिया जा सकता है, जिसमें कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं

- छात्रों में यह चेतना उत्पन्न की जानी चाहिए कि किसी भी समस्या के समाधान में रणनीति की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। अतएव छात्रों की समस्या समाधान के विभिन्न रणनीतियों के बारे में पर्याप्त ज्ञान विकसित करने में शिक्षकों को सहायता करनी चाहिए।

- प्रेस्सली के अनुसार, छात्रों या शिक्षार्थियों को लाभ तब होता है जब शिक्षक उचित रणनीति बनाकर उन्हें दिखाते हैं तथा उनमें सन्निहित कदमों को स्पष्ट शब्दों में बतलाते हैं।

- प्रेस्सली का यह भी कहना है कि उत्तम मेटासंज्ञान तथा आत्म-नियमन छात्रों में तब विकसित होगा जब छात्रों को शिक्षक द्वारा पुराने रणनीतियों की तुलना में नए रणनीतियों के उपयोग पर अधिक बल दिया जाता है तथा छात्र इन दोनों तरह के रणनीतियों की प्रभावशीलता का आपस में तुलना विभिन्न परीक्षणों तथा मूल्यांकन प्रविधियों के निष्पादन के आधार पर करते हैं। .

- शिक्षकों को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि छात्र कोई उत्तम एवं प्रभावी रणनीति का बीच में ही त्याग न करे या फिर ऐसी रणनीति का उपयोग जारी न रखे जिससे उसे किसी किसी तरह की सहायता या समस्या समाधान मिलता हो।

- छात्रों को किसी समस्या के समाधान में एक तरह का ही नहीं बल्कि कई तरह के रणनीतियों का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए अर्थात् छात्रों को बहुल रणनीति के उपयोग हेतु उसे प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। .

सृजनात्मकता (Creativity)

सृजनात्मकता को साधारण शब्दों में इस प्रकार समझा जा सकता है कि यह मनुष्य द्वारा विविध क्षेत्रों में की गई प्रगति एवं विकास है। मौलिक चिन्तन, पुरानी समस्याओं के नवीन समाधान, सृजनशीलता तथा जीवन के भिन्न क्षेत्रों में नवीन दृष्टिकोण अपनाना सृजनात्मकता है। मनुष्य में नित नया करने की इच्छा करती है, जो व्यक्ति नवीन कार्यों को अंजाम देते हैं, उनमें सृजनात्मकता (Creativity) की अपार सम्भावनाएँ होती हैं।

सृजनात्मकता की परिभाषाएँ

प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गई सृजनात्मकता की परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं

स्टेगनर और कार्वोस्की के अनुसार, "सृजनात्मकता में पूर्ण अथवा आंशिक रुप से नवीन वस्तु का उत्पादन निहित है। वे व्यक्ति जो किसी स्थिति के तत्त्वों को सुव्यवस्थित समग्रता में एकीकृत करने में मौलिकता तथा योग्यता का प्रदर्शन करते हैं वे माँ-बाप के रुप में, एक डॉक्टर के रुप में अथवा एक फुटबाल के खिलाड़ी के रुप में सृजनात्मक जीवन व्यतीत कर रहे है।"

स्किनर के अनुसार, "सृजनात्मक चिन्तन का अर्थ किसी व्यक्ति विशेष के लिए भविष्यवाणी, निष्कर्ष नए, मौलिक, सम्पूर्ण तथा असाधारण हैं। सृजनात्मक विचारक वह है, जो नवीन क्षेत्रों की खोज करता है, नवीन अवलोकन करता है, नवीन भविष्यवाणियाँ करता है तथा नवीन निष्कर्ष निकालता है।"

टॉरेन्स के अनुसार, "सृजनात्मक समस्याओं, कमियों, ज्ञान में अन्तर, खोए तत्त्वों, अव्यवस्थाओं इत्यादि के प्रति संवेदनशील बनने की प्रक्रिया है। इसमें कठिनाइयों की पहचान करना समाधानों की खोज, कमियों के विषय में अनुमान लगाना अथवा कमियों के विषय में परिकल्पनाओं की सूत्र बद्धता, परिकल्पनाओं का पुनः परीक्षण तथा सम्भवतः उनका रूपान्तरण तथा पुनः परीक्षण और अन्ततः परिणामों की घोषणा निहित है।"

सृजनात्मकता प्रक्रिया के सोपान

www.studyofeducation.com

शिक्षाशास्त्रियों तथा शिक्षा मनोवैज्ञानिकों ने सृजनात्मक प्रक्रिया को एक जटिल प्रक्रिया माना है और बताया है कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें अनेक सोपान या चरण सम्मिलित होते हैं।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक रिले तथा लेविस ने सृजनात्मक प्रक्रिया में निम्नलिखित सोपान बताए हैं

समस्या का प्रत्यक्षण सृजनात्मक प्रक्रिया का प्रारम्भ एक ऐसी समस्या या ऐसी असामान्य परिस्थिति की पहचान से प्रारम्भ होता है जिसे सामान्य व्यक्ति प्रत्यक्षण नहीं कर पाता। .

समस्या को परिवर्तित करना दूसरे सोपान में समस्या के लिए प्रत्येक सम्भव परिवर्तन लाया जाता है। यह परिवर्तन कई तरीकों से लाया जाता है; जैसे-समस्या का विस्तारण करके, उसे विपरीत करके या उसे अधिक ठोस बनाकर तथा उसके विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करके।

निर्णयों को निलम्बित करना इस सोपान में व्यक्ति समस्या के प्रति परम्परागत निर्णयों को निर्भीक होकर निलम्बित करता है तथा उसके स्थान पर अन्य विचार जो साधारण लोगों को विचित्र लग सकता है, का प्रयोग करते हैं।

उद्भवन प्रभाव जब अनेक प्रकार से कोशिश करने के बाद भी कोई समाधान नहीं निकलता, उद्भवन की अवस्था की उत्पत्ति होती है। सृजनात्मक विचारक इस अवस्था को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानते हैं। अवस्था व्यक्ति समस्या के विषय में चिन्तन को छोड़कर विश्वास करता है। मनोवैज्ञानिकों का मत है कि इस अवस्था में व्यक्ति समस्या से अपना ध्यान हटा लेता है, परन्तु अवचेतन मन अब भी समस्या के विषय में सोचता है तथा चिन्तन जारी रहता है।

किसी एक विचार में बँध जाना इस अवस्था में सृजनात्मक चिन्तन किसी ऐसे विचार पर आकर बँध जाता है, जिसे वह पूरा करना चाहता है तथा लगातार इस विषय में चिन्तन करता रहता है।

परिणाम का अनुमान इस सोपान में व्यक्ति अपनी समस्या के सम्भावित परिणाम का अनुमान लगाने लगता है। व्यक्ति द्वारा इस अवस्था पा सम्भावित परिणाम का जो अनुमान लगाया जाता है वे सही हो भी सकते हैं, नहीं भी, परन्तु उसमें व्यक्ति के उत्साह की अवस्था देखने को मिलती है।

उत्तम निष्कर्ष का चयन इस सोपान में सृजनात्मक चिन्तन समस्या के विभिन्न सम्भावित समाधानों में से उत्तम समाधान चुन लेता है। जब तक वह उत्तम निष्कर्ष का चयन नहीं करता, वह अस्पष्टता, अनिश्चितता तथा सम्भ्रान्ति से घिरा रहता है।

निर्णय के सुसाध्य करने की इच्छा इस सोपान में सृजनात्मक चिन्तन अपने द्वारा लिए गए निर्णय को कार्यरुप देने की इच्छा करता है। वह लोगों के विरोध की परवाह ना करते हुए अपने निर्णय को कार्यरुप देने के लिए प्रयासरत् होता है।

www.studiestoday.com

अनिश्चितता को स्वीकार करना अस्पष्टता एवं अनिश्चितता के वातावरण को पसन्द करना तथा उसे बनाए रखना सृजनात्मकता का एक प्रमुख अंश या भाग है और पूरी सृजनात्मक प्रक्रिया के दौरान इस प्रकार की अनिश्चितता एवं अस्पष्टता को एक सृजनात्मक स्वीकार करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सृजनात्मक प्रक्रिया कई सोपानों में सम्पन्न होती है। एक सृजनात्मक चिन्तक समस्या का समाधान नवीन प्रकार से करता है तथा जब तक समस्या का समाधान ना हो, तब तक उसमें संलग्न रह समस्या का सटीक एवं सृजनात्मक समाधान करता है।

सृजनात्मकता सम्बन्धी मनोवैज्ञानिकों के विचार

www.studyofeducation.com

सृजनात्मक एवं मानसिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति किसी अपूर्ण या नवीन चीजों का निर्माण करता है, किन्तु सृजनात्मक की अभिव्यक्ति कभी नए सिद्धान्तों के रूप में होती है, तो कभी उत्पादों के रूप में, तो कभी विचारों व कलाओं के रूप में और प्रत्येक स्थिति में अपूर्वता या नवीनता की विशेषता विद्यमान रहती है। वास्तव में सृजनात्मकता, अपसारी चिन्तन का ही एक रूप है। इन्हीं बिन्दुओं पर विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं, जो सृजनात्मकता के सिद्धान्त कहलाते हैं, जिनका वर्णन निम्नलिखित है

गेटजेल के विचार

गेटजेल ने अपने सह-मनोवैज्ञानिक जैक्सन के साथ मिलकर सृजनात्मकता को मापने का परीक्षण किया है।

गेटजेल तथा जैक्सन द्वारा सृजनात्मकता की माप मनोवैज्ञानिकों ने अपनी खोज (शोध) में पाँच भिन्न सृजनात्मकता की मापो का प्रयोग किया है।

- **शब्द-साहचर्य परीक्षण (Word-Association Tests)** इसमें विद्यार्थियों को अधिक-से-अधिक परिभाषाएँ देने तथा उन्हें विभिन्न समूहों में रखने के लिए कहा जाता है।
- **वस्तु-परीक्षणों के उपयोग (Uses of Things Test)** इसमें विद्यार्थी को एक साधारण-वस्तु के उपयोग के जितने वह उपयोग दे सकता है, देने के लिए कहा जाता है।

- **छिपी आकृति परीक्षण (Hidden Shapes Tests)** इसमें विद्यार्थी को एक कार्ड पर दी गई सरल आकृति के लिए अधिक जटिल स्वरुप की आकृति की खोज के लिए कहा जाता है।
- **तीन विभिन्न अन्त (Three Different Endings)** इसमें विद्यार्थी से कहा जाता है कि वह अधूरी तीन लोक कथाओं के तीन विभिन्न अन्त सुझाए।
- **समस्याओं की पूर्ति (Make Up Problems)** इसमें एक पूर्ण पैराग्राफ में दी गई सूचना के आधार पर विद्यार्थी से कहा जाता है कि वह जितनी गणितीय समस्याओं की पूर्ति कर सकता है, करे।

टॉरेन्स के विचार

सृजनात्मकता को मापने के लिए टॉरेन्स (Torrance, 1566) ने एक परीक्षण का निर्माण किया है, जो काफी लोकप्रिय सिद्ध हुआ है। इस परीक्षण के दो भाग शाब्दिक भाग (Verbal Section) तथा आकृतिक भाग (Figural Section) है। शाब्दिक भाग के तीन उपभाग हैं, जिनका वर्णन इस प्रकार है

www.studyofeducation.com

- **पूछना और अनुमान करना (Ask and Guess)** इस उपभाग में व्यक्ति को एक तस्वीर या आकृति दी जाती है और यह अनुमान लगाने के लिए कहा जाता है कि देखी गई आकृति किस तरह से या किन कारकों के कारण बनी है तथा आगे इस तस्वीर में क्या होने वाला है?

- **उत्पादन उन्नति (Product Improvement)** इसमें व्यक्ति को एक खिलौना दिखाया जाता है और उसे कुछ ऐसा सुझाव देने के लिए कहा जाता है, जिससे खिलौना कुछ अलग दिखाई पड़े।

- **असाधारण उपयोग (Unusual Uses)** इसमें व्यक्ति साधारण वस्तु; जैसे-टेबल, कुर्सी, टीन आदि का जितना असाधारण उपयोग उसके मन में आता है, बताने के लिए कहा जाता है।

- **टॉरेन्स परीक्षण में सृजनात्मकता (Creativity)** इसमें तीन वस्तुओं के मापन पर बल डाला जाता है-प्रवाहित (Fluency), लचीलापन (Flexibility) तथा मौलिकता (Originality)। यह एक कसौटी-सन्दर्भित परीक्षण (Criterion-Reference Test) है।

गिलफोर्ड के विचार

गिलफोर्ड (Guilford, 1967) ने सृजनात्मकता के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं। इनका कहना है कि सृजनात्मकता की माप करने के लिए जो भी परीक्षण बनाया जाता है, वह मानसिक प्रक्रिया के एक विशेष पहलू का मापन करता है।

गिलफोर्ड का विचार है कि सृजनात्मकता में अपसारी चिन्तन (Divergent Thinking) न कि अभिसारी चिन्तन (Convergent Thinking) सम्मिलित होता है। अपसारी चिन्तन में व्यक्ति को दी गई सूचनाओं के आधार पर विभिन्न दिशाओं का चिन्तन करके किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है। इस तरह के

चिन्तन में समस्या का समाधान व्यक्ति तभी कर पाता है, जब वह अपनी ओर से कुछ नए तत्त्व या सूचनाओं को परिस्थिति में ला पाता है। इन्होंने सृजनात्मकता को मापने के लिए दो तरह के परीक्षणों पर अधिक बल डाला है-
-असाधारण उपयोग परीक्षण (Unusual Uses Test) तथा परिणाम परीक्षण (Consequences Test)

इन दोनों तरह के परीक्षणों को निम्न प्रकार समझा जा सकता है

परिणाम परीक्षण

इस तरह के परीक्षण में परीक्षार्थी को कुछ परिवर्तन के परिणाम के बारे में बताने के लिए कहा जाता है। उसे यह विशेष रूप से कहा जाता है कि बतलाए गए परिवर्तन के अधिक-से-अधिक परिणामों के बारे में बताएँ। उन उत्तरों में से नवीन, परन्तु उपयुक्त उत्तरों की पहचान विशेषज्ञों द्वारा की जाती है और ऐसे ही उत्तरों को सृजनात्मकता का सूचक माना जाता है; जैसे-परीक्षार्थी से यह प्रश्न पूछा जा सकता है क्या परिणाम होगा जब अचानक सभी लोग अपना सन्तुलन खो बैठे और सीधे अपने पैर पर खड़ा रहने में अपने आप को असमर्थ पाएँ?

इस प्रश्न के कुछ निम्नांकित सम्भावित उत्तर हो सकते हैं -

- हेलियम बैलून को लोगों के सिर से बाँध दिया जाए, ताकि वे खड़े रहकर सन्तुलन बनाए रखें।
- डॉक्टरों के यहाँ रोगियों की संख्या में अधिक वृद्धि हो जाएगी।
- तत्काल भोजन तथा जल की उपलब्धता कराना।
- सबको खड़ा होने के लिए सहायक वस्तु दिया जाना चाहिए, जिससे वे खड़े रहने में समर्थ हों।
- चिकित्सकीय सुविधा तत्काल उपलब्ध कराना।

www.studyofeducation.com

इस तरह से दिए गए उत्तरों में से नए, परन्तु उपयुक्त उत्तरों के आधार पर सृजनात्मकता का आकलन किया जाता है। ऐसे उत्तरों की संख्या जितनी ही अधिक होती है, व्यक्ति में सृजनात्मकता उतनी ही अधिक समझी जाती है।

असाधारण उपयोग परीक्षण

इस परीक्षण में परीक्षार्थी (Testee) को सामान्य वस्तु (Common Object) का उपयोग बताने के लिए कहा जाता है। विद्यार्थी को इस बात का निर्देश दिया जाता है कि वे प्रत्येक दी गई वस्तु का अधिक-से-अधिक उपयोग बता सकते हैं, ऐसे उपयोगों की संख्या जितनी अधिक होती है, व्यक्ति में सृजनात्मकता का गुण उतना ही अधिक समझा जाता है; जैसे-किसी परीक्षार्थी को ईंट का उपयोग बताने के लिए कहा जा सकता है।

यहाँ कुछ सम्भावित उत्तर दिए जा रहे हैं -

- मकान बनाने के काम आना।
- किसी को मारने के काम आना।
- भगाने कुत्ता या बिल्ली काम आना।
- काँटी ठोकने के काम आना।
- खिड़की का शीशा तोड़ने में काम आना।
- पेपरवेट (Paperweight) के रूप में उपयोग करना।
- लाल पाउडर (Red Powder) बनाने के काम आना।
- इस तरह के दिए गए उत्तरों में असाधारण, परन्तु उपयुक्त उत्तर के आधार सृजनात्मक (Creativity) का मापन किया जाता है

www.studyofeducation.com

बुद्धि तथा सृजनात्मकता में सम्बन्ध

बुद्धि तथा सृजनात्मकता दोनों ही दो अलग-अलग सम्प्रत्यय (Concepts) हैं, किन्तु फिर भी इन दोनों में गहरा सम्बन्ध है। सृजनात्मकता में व्यक्ति किसी नए तथा मौलिक तथ्य को प्राप्त करने की कोशिश करता है। मनोवैज्ञानिकों ने अपने शोधों के आधार पर बताया कि कम बुद्धि वाले व्यक्ति में सृजनात्मकता न के बराबर होती है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं निकाला जा सकता है कि अधिक बुद्धि वाले व्यक्ति के अन्दर सृजनात्मकता अवश्य ही होती है।

मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों में पाया कि 110 से 120 बुद्धि-लब्धि (Intelligence quotient) तक सृजनात्मकता तथा बुद्धि में धनात्मक सह-सम्बन्ध होता है, इसका अर्थ यह है कि बुद्धि-लब्धि के इस स्तर तक बुद्धि बढ़ने के साथ ही सृजनात्मकता भी

बढ़ती है और बुद्धि घटने पर सृजनात्मकता भी घटती है, परन्तु जब बुद्धि-लब्धि 120 से ऊपर बढ़ता है; जैसे-130-140 हो जाता है, तो वैसे व्यक्तियों में सृजनात्मकता न के बराबर होती है।

गेटजेल तथा जैक्सन (Gestzels & Jackson, 1962) ने तीव्र बुद्धि के स्कूली छात्रों में पाया कि उनमें सृजनात्मकता तथा बुद्धि के बीच सह-सम्बन्ध (Correlation) मात्र 11 से 49 तक का ही था। बेरॉन (Barron, 1961) ने भी अपने अध्ययन में पाया कि बुद्धि-लब्धि 120 से अधिक होने पर सृजनात्मकता के साथ बुद्धि का रिश्ता समाप्त होने लगता है। रिपल तथा मेय (Ripple & May, 1962) ने अधिक तीव्र बुद्धि के व्यक्तियों के बीच सृजनात्मकता (Creativity) तथा बुद्धि में सहसम्बन्ध मात्र 17 पाया, परन्तु सामान्य लोगों (जिसमें सभी स्तर बुद्धि के लोग थे) में इन दोनों के बीच सहसम्बन्ध कुछ अधिक लगभग 60 तक पाया गया।

इन अध्ययनों से दो तथ्यों का पता लगता है

1. सृजनात्मकता के लिए बुद्धि का एक साधारण स्तर जैसे बुद्धि का 100-120 तक होना अनिवार्य है, क्योंकि बुद्धि-लब्धि को इस सीमा से कम-या-अधिक होने पर सृजनात्मक का सम्बन्ध बुद्धि से लुप्त-सा हो जाता है।

2. बुद्धि प्राप्तांक (Intelligence Score) के वितरण के ऊपरी छोर पर सृजनात्मकता का सम्बन्ध बुद्धि से समाप्त हो जाता है। अतः ऐसी अवस्था में सृजनात्मकता बुद्धि से स्वतन्त्र जाती है।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कुछ मनोवैज्ञानिकों ने सृजनात्मकता के एक विशेष मॉडल का निर्माण किया है जिसे 'देहली मॉडल' (Threshold Model) की संज्ञा दी गई है।

इस मॉडल के अनुसार किसी भी सृजनात्मक कार्य के लिए बुद्धि का एक न्यूनतम स्तर (या देहली) आवश्यक है।

उस न्यूनतम स्तर या देहली के बाद सृजनात्मकता, बुद्धि के अलावा अन्य कारकों (Factors); जैसे-विचारों की प्रवाहिता (Fluency) तथा अन्य व्यक्तित्व चरों (Personality Variables) पर अधिक निर्भर होता है। प्रत्येक सृजनात्मक कार्य (Creativity Act) के लिए बुद्धि का न्यूनतम स्तर या देहली (Threshold) एक ही नहीं होती है, बल्कि अलग-अलग सृजनात्मक कार्यों के लिए बुद्धि का न्यूनतम स्तर भिन्न-भिन्न होता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि एक विशेष सीमा तक सृजनात्मकता तथा बुद्धि एक-दूसरे से सम्बन्धित रहती है, परन्तु उस स्तर के पूरे हो जाने के बाद बुद्धि सृजनात्मकता से स्वतन्त्र हो जाती है।

www.studyofeducation.com

www.studyofeducation.com

PART C - अधिगम के नियम तथा सिद्धान्त

अधिगम या ज्ञानार्जन (Learning)

प्रत्येक प्राणी में जन्म के समय से ही कुछ जन्मजात कार्य क्षमताएँ विद्यमान रहती हैं। फलस्वरुप वह कुछ सरल शारीरिक प्रतिक्रियाएँ करता है, लेकिन वातावरण के साथ उसे अभियोजन स्थापित करने हेतु कुछ-न-कुछ सीखना पड़ता है। इस प्रकार, जन्मोपरान्त वातावरण के सम्पर्क से प्राणी अपनी जन्मजात शारीरिक कार्यक्षमता को बढ़ाता है। इस क्रम में वह कुछ नई प्रतिक्रियाएँ करना सीखता है अथवा अपनी किसी प्रतिक्रिया में अभियोजन के योग्य बनाने हेतु संशोधन या परिवर्तन लाता है। इसे ही अधिगम सीखना (Learning) कहते हैं। सामान्यतः अधिगम या सीखना व्यवहार में परिवर्तन को कहा जाता है, किन्तु सभी प्रकार का व्यवहार परिवर्तन अधिगम नहीं है। किन्हीं विशेष परिस्थतियों; जैसे-थकान, बीमारी अथवा अन्य किसी कारण से भी व्यवहार में परिवर्तन होता है जिसे अधिगम नहीं जा सकता। मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम से तात्पर्य केवल उन्हीं परिवर्तनों से माना है जिनसे मानव व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन हो। अर्थात् प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अनुभवों से व्यक्ति के व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन लाना ही अधिगम कहलाता है।

अधिगम की परिभाषाएँ

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम को विभिन्न अर्थों में परिभाषित किया है, अधिगम की विभिन्न परिभाषाएँ निम्न प्रकार है

सारटेन, नॉर्थ, स्ट्रेंज तथा चैपमैन (Sartain, North, Strange and Chapman, 1973) के अनुसार, "सीखना एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा अनुभूति या अभ्यास के फलस्वरुप व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन होता है।"

www.studyofeducation.com

अण्डरवुड (Underwood) के अनुसार, “सीखना नई प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करना या पुरानी प्रतिक्रियाओं की क्रियाशीलता को बढ़ाना है।"

कम्बल (Kimble) के अनुसार, "सीखना व्यवहारा या व्यवहारात्मक शक्ति में अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन है, जो अनुभूति के कारण होता है और जिसे अस्थायी शारीरिक अवस्थाओं; जैसे—वे अवस्थाएँ जो बीमारी, थकान या औषधि लेने से उत्पन्न होती हैं, के रुप में आरोपित नहीं किया जा सकता।"

मॉर्गन, किंग विस्ज तथा स्कॉपलर (Morgan, King weisz and Schopler, 1986) के अनुसार, "अभ्यास या अनुभूति के परिणामस्वरुप व्यवहार में होने वाले अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन को सीखना कहा जाता है।"

वुडवर्थ (Woodworth) के अनुसार, "कोई भी क्रिया जो व्यक्ति को अच्छे या बुरे किसी भी रुप में विकसित करता है तथा जो उसके बाद में होने वाले व्यवहार को जैसाकि वे हो सकते थे उससे भिन्न बनाता है, को सीखना कह सकते हैं।"

वुडवर्थ एवं माक्विस (Woodworth and Marquis) के अनुसार, “नए ज्ञान एवं नई प्रतिक्रियाओं को अर्जित करने की प्रक्रिया ही अधिगम की प्रक्रिया है।"

अधिगम की प्रक्रिया (Process of Learning)

सीखना एक विस्तृत तथा व्यापक प्रक्रिया है। इसमें निरन्तरता का गुण पाया जाता है। यह क्रिया विभिन्न सोपानों से होकर सम्पन्न होती है। स्मिथ ने इन सोपानों की सार रूप में निम्न प्रकार से चर्चा की है

"संक्षिप्त रुप में सीखने की प्रक्रिया में कोई अभिप्रेरक या चालक, कोई आकर्षक लक्ष्य और इस लक्ष्य की प्राप्ति से सम्बन्धित कोई बाधा या कठिनाई उपस्थित रहती है। ये सभी बहुत आवश्यक हैं।"

स्मिथ के कथन पर विचार करने पर निष्कर्ष निकलता है कि उन्होंने सीखने की प्रक्रिया के **प्रथम सोपान** के रूप में अभिप्रेरक अथवा चालक की चर्चा की है। अभिप्रेरक शक्ति के वह गतिशील स्रोत हैं, जो व्यवहार को शक्ति प्रदान करने और बालक को कुछ-न-कुछ करने के लिए प्रेरित करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मूलभूत आवश्यकताओं और अभिप्रेरणाओं की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहना पड़ता है। जब तक हमारा वर्तमान व्यवहार, ज्ञान भण्डार तथा कुशलताएँ हमारी सभी आवश्यकताओं और अभिप्रेरणाओं की पूर्ति करती रहती हैं, हमें किसी भी प्रकार के नवीन ज्ञान का संचय करने, कौशल अर्जित करने तथा व्यवहार में परिवर्तन लाने की आवश्यकता नहीं होती। ऐसी आवश्यकता पड़ने पर ही कुछ-न-कुछ सीखने की इच्छा उत्पन्न होती है।

www.studyofeducation.com

द्वितीय सोपान के अन्तर्गत लक्ष्य एवं उद्देश्य की चर्चा की है। अभिप्रेरणाएँ और मूलभूत आवश्यकताएँ अपनी सन्तुष्टि चाहती हैं, जब इनकी सन्तुष्टि की माँग अत्यधिक बढ़ जाती है, तो प्राणी को इसके लिए संघर्षरत रहना पड़ता है। इस कार्य के लिए उसे कुछ स्पष्ट लक्ष्य और उद्देश्य निर्धारित करने पड़ते हैं। इनकी प्राप्ति के लिए कुछ सीखने की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। लक्ष्य और उद्देश्य जितने स्पष्ट होते हैं, सीखने की अभिलाषा उतनी ही बलवती होती है।

तृतीय सोपान इसके अन्तर्गत किसी-न-किसी प्रकार की रुकावट, कठिनाई या बाधा सामने आ जाती है। यदि बाधा और कठिनाई का अनुभव न हो तो व्यक्ति को अपने व्यवहार में परिवर्तन लाने तथा नवीन ज्ञान और कौशल को अर्जित करने की आकांक्षा ही उत्पन्न नहीं होगी। अत: तीसरा सोपान भी अधिगम प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। एक व्यक्ति द्वारा एक समय में जो कुछ भी सीखा जाता है उससे उसके व्यवहार में अपेक्षित संशोधन और परिवर्तन आना स्वाभाविक ही है। वह अपने व्यवहार में इन परिवर्तनों को आत्मसात् कर लेता है। इस प्रकार जो कुछ भी वह सीखता है, वह उसकी अपनी प्रकृति और सीखने की प्रक्रिया की सार्थकता के आधार पर दीर्घ समय तक याद रहता है।

साथ ही समय पर काम में लाया जा सकता है। इसलिए सीखने की प्रक्रिया किसी एक परिस्थिति में किसी एक प्रकार के ज्ञान तथा कौशल को अर्जित करने के साथ समाप्त नहीं हो जाती। यह कभी भी न समाप्त होने वाली प्रक्रिया है, जो जीवनपर्यन्त चलती रहती है। एक परिस्थिति में जो कुछ सीख लिया जाता है उसे उसी तरह की दूसरी परिस्थितियों में भली-भाँति काम में लाया जा सकता है। सीखने में जो कुछ कमियाँ रह जाती, उनकी पूर्ति आगे होती रहती है और इस तरह सीखने की प्रक्रिया अनवरत् आगे बढ़ती रहती है।

www.studyofeducation.com

अधिगम के नियम (Principles of Learning)

थॉर्नडाइक ने वर्ष 1920 में सीखने के जिन नियमों की व्याख्या की है, वे आज भी काफी महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं तथा शिक्षक उन नियमों को कक्षा प्रयोग करके अपने अध्यापन को अधिक सार्थक एवं फलीभूत बनाने में समर्थ हुए हैं सीखने के इन नियमों को दो भागों में बाँटा गया है

1. सीखने के मुख्य नियम (Major Laws of Learning)

2. सीखने के सहायक नियम (Subordinate Laws of Learning)

इन दोनों नियमों के अन्तर्गत थॉर्नडाइक ने कई नियमों का वर्णन किया है

1. सीखने के मुख्य नियम -

थॉर्नडाइक ने सीखने के मुख्य तीन नियमों की चर्चा की है-तत्परता का नियम, प्रभाव का नियम एवं अभ्यास का नियम।

इन तीनों नियमों एवं इनकी शैक्षिक उपयोगिता निम्नलिखित है

1. तत्परता का नियम

एक तत्परता के नियम के बारे में थॉर्नडाइक ने कहा है - "जब कोई व्यक्ति अनुक्रिया के लिए तैयार होता है, तो उसके लिए परिणाम सन्तोषजनक होता है, परन्तु जब कोई बालक अनुक्रिया के लिए तत्पर नहीं होता तब उसके लिए अनुक्रिया खिझाने वाली होती है, जब कोई बालक एक कार्य के लिए तैयार हो तो उसके लिए अनुक्रिया करना भी खीझ उत्पन्न करने वाला होता है।"

तत्परता के नियम का सम्बन्ध प्रभाव तथा अभ्यास से सम्बन्धित है, जब व्यक्ति शारीरिक तथा मानसिक रुप से कार्य करने के लिए तैयार होता है, तभी वह किसी कार्य को सफलतापूर्वक कर सकता है। इस नियम को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है। नर्सरी कक्षा के बच्चों को पुस्तक पढ़ाना या अक्षर ज्ञान देना इसलिए कठिन होता है कि वे शारीरिक तथा मानसिक रुप से इतने सक्षम नहीं होते हैं कि वे पुस्तक पढ़ सकें। इसी प्रकार छः माह के शिशु को चलना इसलिए नहीं सिखाया जा सकता, क्योंकि वह शारीरिक रुप से चलने हेतु सक्षम नहीं होता। इससे स्पष्ट है कि तत्परता के नियम का आधार परिपक्वता है।

www.studyofeducation.com

तत्परता का नियम एवं कक्षा

- अध्यापक नवीन ज्ञान देने से पूर्व बालकों को मानसिक रुप से तैयार करें।
- अध्यापक को नया ज्ञान देने से पूर्व यह देखना चाहिए, कि बच्चे अपेक्षित क्रिया के लिए तैयार हैं या नहीं।
- अध्यापक को चाहिए कि वह बालकों की रुचि अभिरुचि, योग्यता, क्षमता, उपलब्धि आदि का परीक्षण कर ले।

2. प्रभाव का नियम

थॉर्नडाइक ने प्रभाव के नियम की व्याख्या इस प्रकार की है-"जब एक स्थिति और अनुक्रिया के मध्य एक परिवर्तनीय संयोग (Bond) बनता है और उसके साथ ही या उसके परिणामस्वरूप सन्तोषजनक अवस्था पैदा होती है, तो उस संयोग की शक्ति बढ़ जाती है। अब इस संयोग के साथ यह उसके बाद सिखाने वाली अवस्था पैदा होती है तो उसकी शक्ति घट जाती है।" थॉर्नडाइक का मानना था कि जिन कार्यों को करने से व्यक्ति को सन्तोष मिलता है, उसे वह बार-बार करता है, जिन कार्यों में असन्तोष मिलता

है उन्हें वह नहीं करना चाहता। थॉर्नडाइक ने चूहों पर प्रयोग किए। इसके लिए उन्होंने एक भूल-भुलैया बनवाई, उसमें भोजन रख दिया और चूहों को उसमें छोड़ दिया। भोजन प्राप्त करने के लिए चूहे प्रयत्न करते थे। जब-जब उनको - भूल-भुलैया में भोजन मिला, तब-तब चूहों ने प्रयत्न किया। जब-जब भोजन नहीं मिला, उन्होंने असन्तोष अनुभव किया तथा क्रिया में शिथिलता बरती। यहाँ पर एक बात स्पष्ट करना आवश्यक है कि जब किसी संयोग पर शक्तिशाली प्रभाव पड़ता है, तो उसे **पृष्ठपोषण प्रभाव** कहा जाता है।

प्रभाव का नियम एवं कक्षा

- अध्यापक को छात्रों को सीखने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
- जब तक अध्यापक छात्रों को प्रेरणा नहीं देगा, तब तक बालक सीखी जाने वाली क्रिया के लिए तत्पर नहीं होगा।
- अध्यापक को चाहिए कि वह जो भी क्रिया विद्यालय में कराए वह छात्रों के मानसिक स्तर के अनुकूल होनी चाहिए।
- अध्यापक को विद्यालय में ऐसी विधियाँ अपनानी चाहिए, जिससे छात्रों में सन्तोषप्रद अनुभव प्राप्त हो सके।

www.studyofeducation.com

3. अभ्यास का नियम

अभ्यास के नियम की व्याख्या थॉर्नडाइक ने इस प्रकार की है

जब परिवर्तनीय संयोग एक स्थिति और अनुक्रिया के बीच बनता है, तो अन्य सब बातें समान होने पर उस संयोग की शक्ति बढ़ जाती है। जब कुछ समय तथा स्थिति एवं अनुक्रिया के बीच एक परिवर्तनीय संयोग नहीं बनता तो उस संयोग की शक्ति घट जाती है अर्थात् जिस कार्य को हम बार-बार करते हैं, उसके चिह्न मस्तिष्क में दृढ़ हो जाते हैं। इस नियम के अन्तर्गत दो उप-नियम हैं

1. **उपयोग का नियम** इस बात पर बल देता है कि मनुष्य उसी कार्य को बार-बार करता है, जिसकी वह उपयोगिता समझता है।
2. **अनुपयोग के नियम** के अन्तर्गत अन्य बातें समान रहने पर यदि क्रिया अनुपयोगी होती है, तो संयोगी निर्धारण में वह क्षीण हो जाती है।

अभ्यास का नियम एवं कक्षा

• अध्यापक को चाहिए कि जो भी वह पढ़ाए उसका मौखिक अभ्यास अवश्य कराए। पढ़ाए गए पाठों का समय-समय पर पुनराभ्यास अवश्य होना चाहिए।

• वाद-विवाद कराया जाए जिससे बालक अपने सीखे गए पाठ को प्रस्तुत करते हैं तथा सहपाठी से सीखते हैं।

2. सीखने के सहायक नियम

थॉर्नडाइक ने अधिगम (सीखने) के पाँच सहायक नियमों का भी वर्णन किया है। इन्हें सहायक नियम इसलिए कहा जाता है, क्योंकि ये उपरोक्त तीनों नियमों की तुलना में कम महत्त्वपूर्ण हैं। ये पाँच सहायक नियम निम्नलिखित हैं

1. **बहुअनुक्रिया का नियम** यह नियम बताता है कि किसी भी कार्य को सीखने की परिस्थिति में व्यक्ति अनेक अनुक्रियाएँ करता है इसमें कुछ अनुक्रियाएँ, । लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक नहीं होती, उन्हें व्यक्ति भूल जाता है तथा वे अनुक्रियाएँ जो लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक होती हैं, उन्हें वह सीख लेता है। इस नियम की शैक्षिक उपयोगिता यह बताती है कि छात्रों को कक्षा में किसी चीज को स्वयं करके सीखने के लिए प्रेरित करना चाहिए जिससे बालक अनेक प्रकार की अनुक्रियाएँ करेंगे। जिससे उनमें भिन्न-भिन्न प्रकार की अनुभूतियाँ होंगी। इन अनुभूतियों से उन्हें सीखने में सहायता मिलेगी।

2. **मानसिक वृत्ति या मनोवृत्ति का नियम** यह नियम बताता है कि शिक्षण की प्रक्रिया बहुत सीमा तक व्यक्ति की मानसिक वृत्ति तथा मनोवृत्ति पर निर्भर करती है। मानसिक वृत्ति से तात्पर्य किसी कार्य को करने की तत्परता से होता है। मानसिक वृत्ति एवं मनोवृत्ति से सिर्फ यही नहीं पता चलता है कि व्यक्ति क्या करेगा, बल्कि यह भी पता चलता है कि वह किस कार्य से सन्तुष्ट होगा। इस नियम की शैक्षिक उपयोगिता यह है कि शिक्षक को चाहिए कि वे कक्षा के वातावरण को इस योग्य बनाए कि बालक शिक्षण के प्रति एक धनात्मक मनोवृत्ति विकसित कर सके तथा वह बिना किसी प्रकार के सांवेगिक तनाव के शिक्षण कार्य में अभिरुचि दिखा सके।

3. **तत्त्व प्रबलता इस नियम** के अनुसार किसी भी सीखने की परिस्थिति में सुसंगत तथा असुसंगत दोनों ही तरह के तत्त्व होते हैं। जिनकी प्रबलता या सार्थकता अलग-अलग होती है। छात्र सुसंगत तत्त्वों को अलग कर देता है, क्योंकि इनकी सार्थकता अपेक्षाकृत अधिक होती है। इस नियम की शैक्षिक उपयोगिता यह है कि शिक्षकों को चाहिए कि कक्षा में अध्यापन करने से पहले विषयों को उचित प्रकार सुसज्जित कर लें तथा उससे सम्बन्धित अधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य वे शिक्षार्थियों को पहले ही बता सकें तथा तुलनात्मक रुप से कम महत्त्वपूर्ण तथ्यों को बाद में बताएँ। ऐसा करने से शिक्षार्थी विषय की प्रबलता को समझ पाएँगे तथा उन्हें उचित प्रकार ग्रहण कर पाएंगे।

4. **अनुरूपता अथवा सादृश्यता का नियम** इस नियम के अनुसार व्यक्ति किसी परिस्थिति में वैसी ही अनुक्रिया करता है, जो उसके पूर्व अनुभव या पहले सीखी गई अनुक्रिया के सदृश होती है। इस नयी परिस्थिति में पहले सीखी गई परिस्थिति से कितना हस्तान्तरण होगा, इस बात पर निर्भर करता है कि दोनों परिस्थितियों में सामान्य तत्त्वों की संख्या कितनी है। संख्या जितनी अधिक होगी, स्थानान्तरण उतना ही अधिक होगा। इसे 'हस्तान्तरण का सामान्य तत्त्व सिद्धान्त' भी कहा

जाता है। इस नियम को शिक्षक कक्षा में मूलतः दो प्रकार से उपयोग करते हैं। पहला, वे जब भी कोई नया पाठ पढ़ाना शुरु करते हैं, तो उसकी सार्थकता पहले बताए हुए तत्त्वों के रुप में करने का प्रयास करते हैं। दूसरा, शिक्षक ऐतिहासिक घटनाओं के साथ वर्तमान घटनाओं का सम्बन्ध जोड़ते हैं, ताकि छात्र वर्तमान घटना को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य समझ सकें।

5. **साहचर्यात्मक स्थानान्तरण का नियम** इस नियम के अनुसार, कोई भी अनुक्रिया जिसे करने की क्षमता व्यक्ति में है, एक नए उद्दीपन से भी उत्पन्न हो सकती है। यदि एक ही अनुक्रिया को लगातार एक ही परिस्थिति में कुछ परिवर्तनों के बीच उत्पन्न किया जाता है, तो अन्त में वही अनुक्रिया एक बिल्कुल ही नए उद्दीपन से भी उत्पन्न हो जाती है। इस नियम की शैक्षिक उपयोगिता बताते हुए शिक्षा मनोवैज्ञानिकों ने कहा है कि शिक्षकों को चाहिए कि वे कक्षा में छात्रों में अच्छी आदतें एवं स्वास्थ्यकर अभिरुचि उत्पन्न करें, ताकि बाद में छात्र अन्य परिस्थितियों में इन आदतों एवं अभिरुचियों का लाभ उठा सकें। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सीखने के कई नियम हैं और इन नियमों की शैक्षिक उपयोगिताएँ एवं महत्त्व भी अधिक है।

www.studyofeducation.com

अधिगम के सिद्धान्त (Theories of Learning)

सीखने के आधुनिक सिद्धान्तों को निम्नलिखित दो मुख्य श्रेणियों व्यवहारवादी सम्बन्धवाद सिद्धान्त एवं ज्ञानात्मक एवं क्षेत्र संगठनात्मक सिद्धान्त में विभक्त किया जा सकता है। विभिन्न उद्दीपनों के प्रति सीखने वाले की विशेष अनुक्रियाएँ होती हैं। इनके साहचर्य से उसके व्यवहार में जो परिवर्तन आते हैं, उनकी व्याख्या करना ही पहले प्रकार के सिद्धान्तो का उद्देश्य है। इस प्रकार के सिद्धान्तों के प्रमुख प्रवर्तकों में थॉर्नडाइक, वाटसन और पावलॉव तथा स्कीनर के नाम मुख्य रुप से उल्लेखनीय हैं।

अधिगम के व्यवहारपरक सिद्धान्त

अधिगम के व्यवहारपरक सिद्धान्त के तहत प्रमुख विद्वानों के व्यवहारवादी सिद्धान्तों का उल्लेख निम्न है

थॉर्नडाइक का व्यवहारवादी या सम्बन्धवाद सिद्धान्त (प्रयत्न तथा भूल सिद्धान्त)

उददोपन अनुक्रिया सिद्धान्त को सम्बन्धवाद, संयोजनवाद भी कहा जाता है। इस दान्त के प्रतिपादक थॉर्नडाइक हैं, थार्नडाइक एक प्रसिद्ध व्यवहारवादी थे। अतः उन्होंने सीखने की व्याख्या व्यवहारवादी सिद्धान्तों के अनुकूल की है। उन्होंने अधिगम सिद्धान्त के निर्माण तथा उसके व्यवहार परिवर्तन पर अत्यधिक कार्य किया है। धार्नडाइक के अधिगम के सिद्धान्तों एवं तत्त्वों का आधार यह है कि यान्त्रिक तत्त्व में उद्दीपनों और अनुक्रियाओं में संयोग बन जाते हैं। ये संयोग संकेतों से स्पष्ट किए जाते हैं। थॉर्नडाइक ने इस संयोग को बन्ध या संयोग से भी प्रस्तुत किया है, इसी कारण घॉर्नडाइक का यह मत **बॉण्ड थ्योरी ऑफ लर्निंग** भी कहा जाता है।

थार्नडाइक ने इसलिए यह कहा है "सीखना सम्बन्ध स्थापित करना है और सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य मस्तिष्क करता है।' थॉर्नडाइक का मानना है कि मनुष्य अथवा पशु किसी कार्य को प्रयत्न तथा भूल' की प्रक्रिया द्वारा सीखता है। थॉर्नडाइक के अनुसार सोखने की प्रक्रिया में दो उपक्रियाएँ सम्मिलित होती हैं -चयन तथा सम्बन्ध। चयन की प्रक्रिया द्वारा शिक्षार्थी अनेक प्रकार की अनुक्रियाओं में की गई अनुक्रिया को चुन लेता है। थॉर्नडाइक ने अपने सिद्धान्त में सही अनुक्रिया को परिभाषित करते हुए कहा है कि सही अनुक्रिया वह अनुक्रिया है जिसको करने के बाद पुनर्बलन शिक्षार्थी को मिलता है। यही कारण है कि थॉर्नडाइक के सीखने के सिद्धान्त को उद्दीपन-अनुक्रिया का सिद्धान्त भी कहते हैं। इससे सम्बन्धित उन्होंने कई प्रयोग किए जिसमें थॉर्नडाइक का बिल्ली व मछली प्रयोग प्रमुख है।

www.studyofeducation.com

थॉर्नडाइक का बिल्ली व मछली प्रयोग

थार्नडाइक ने एक भूखी बिल्ली को एक **उलझन पेटिका** में बन्द कर दिया। पेटिका इस प्रकार बनाई कि उसमें केवल एक ही दरवाजा था, जोकि लीवर के दबने पर खुलता था। पेटिका से कुछ दूरी पर भोजन सामग्री के रूप में मछली को रख दिया गया। मछली की गन्ध ने इस परिस्थिति में एक शक्तिशाली अभिप्रेरक (Motive) का कार्य किया और बिल्ली पेटिका से बाहर आने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करने लगी। थॉर्नडाइक के शब्दों में, "यह प्रत्येक छिद्र में से रास्ता खोजने का प्रयत्न करती है, सलाखों या तारों पर पंजा मारती है और मुँह से काटती है। प्रत्येक छिद्र में अपना पँजा मारती है और जहाँ पहुँचती है वहीं नोचती काटती है।" इस प्रकार बिल्ली ने सभी तरह से उल्टे सीधे पंजे चलाए तथा उछल-कूद की। इसी दौरान उसका पंजा संयोग से लीवर पर लगा और दरवाजा खुल गया। बिल्ली ने बाहर निकलकर मछली खा ली। दूसरी बार फिर प्रयोग को दोहराया गया। बिल्ली ने फिर वही हरकतें कीं तथा काफी प्रयत्नों पर फिर संयोग से लीवर पर पैर पड़ने से दरवाजा खुल गया, परन्तु इस बार कम समय लगा। इस प्रकार प्रयोग अनेक बार दोहराया गया और बिल्ली के प्रयत्नों की संख्या कम होती गई और बाहर निकलने में कम समय लगता गया। अन्ततः बिल्ली एक ही प्रयास में लीवर दबाकर दरवाजा खोलना सीख गई।

यह प्रयोग सीखने की प्रक्रिया में निम्न सोपानों की उपस्थिति का संकेत करता है -

- चालक या अभिप्रेरक भूख ने चालक का या अभिप्रेरक का कार्य किया तथा मछली की गन्ध ने उसे और उत्तेजित किया।
- लक्ष्य सन्दूक से निकलकर मछली खाना।

- बाधा बाहर निकलने का द्वार बन्द था।
- सही प्रयत्न का चुनावी
- अव्यवस्थित प्रयत्न बाहर निकलने के लिए
- संयोगवश सफलता।
- स्थिरता।

सिद्धान्त की विशेषताएँ

यह सिद्धान्त साहचर्य सिद्धान्तों का एक अंग है। थॉर्नडाइक ने अपने प्रयोगों की मदद से उद्दीपन अनुक्रिया सिद्धान्तों की विशेषताओं का पता लगाया, जो उसे साहचर्य के सिद्धान्तों में विशेष स्थान देते हैं। विशेषताएँ इस प्रकार हैं

संयोजन सिद्धान्त थॉर्नडाइक के परिणाम यह संकेत देते हैं कि संयोजन सिद्धान्त मनोविज्ञान के क्षेत्र में नवीन विचारधारा तो है ही साथ ही वह अधिगम का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त भी है।

अधिगम संयोजन उद्दीपन सिद्धान्त के अनुसार अधिगम की क्रिया में विभिन्न परिस्थितियों के साथ सम्बन्ध स्थापित होता है। थॉर्नडाइक ने उसका परीक्षण करने के लिए मछली, चूहों तथा बिल्लियों पर प्रयोग किए और यह निष्कर्ष निकाला कि अधिगम की क्रिया को आधार स्नायुमण्डल है। स्नायुमण्डल में एक स्नायु का दूसरे स्नायु से सम्बन्ध हो जाता है।

आंगिक महत्त्व संयोजनवाद मानव को सम्पूर्ण इकाई नहीं मानता, वह तो मानव व्यवहार का विश्लेषण करता है। यह मत पावलॉव के अनुबद्ध अनुक्रिया सिद्धान्त से सम्बन्ध रखता है, यह मत संयोगों को सम्बन्ध देता है तथा बुद्धि को परिमाणात्मक मानता है। जो व्यक्ति अपने जीवन में जितने अधिक संयोग स्थापित कर लेता है उसे उतना ही अधिक बुद्धिमान माना जाता है अर्थात् उसे अधिक ज्ञान होता है

सिद्धान्त की आलोचना

- किसी क्रिया के अधिगम के लिए व्यर्थ के प्रयत्नों पर बल दिया जाता है।
- यह मत किसी क्रिया के अधिगम का विवरण प्रस्तुत करता है। यह बताता है कि क्रिया किस प्रकार सीखी जाती है? पर क्यों सीखी जाती है? इस विषय में मौन है।
- यह मत मानव को मशीन मानता है।
- यह मत यान्त्रिकता पर बल देता है।

www.studyforeducation.com

पावलॉव का क्लासिकी (शास्त्रीय) अनुबन्धन सिद्धान्त

आई. पी. पावलॉव एक प्रसिद्ध रुसी शरीर वैज्ञानिक थे। जिन्होंने पाचन क्रिया के दैहिक (Physiology of Digestion) का विशेष रुप से अध्ययन करना प्रारम्भ किया। उनका यह अध्ययन इतना लोकप्रिय एवं महत्त्वपूर्ण हुआ कि वर्ष 1904 में इसके लिए उन्हें 'नोबेल पुरस्कार' भी दिया गया। पावलॉव ने इन अध्ययनों के दौरान लारमय अनुबन्ध की घटना का अध्ययन किया तथा इससे सम्बन्धित सीखने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे **अनुबन्धित अनुक्रिया या टाइप-एस अनुबन्धन सिद्धान्त** कहा जाता है।

पावलॉव का कुत्ते पर प्रयोग

पावलॉव ने पाचन क्रिया सम्बन्धी कुछ निरीक्षणों के लिए कुत्ते पर एक प्रयोग किया, उन्होंने उसके गले की सर्जरी करके लार ग्रन्थि को एक नली से जोड़ दिया।

उन्होंने देखा कि कुत्ता भोजन को देखकर लार टपकाता है। इस प्रकार भोजन स्वाभाविक उद्दीपक और लार स्वाभाविक अनुक्रिया का सम्बन्ध प्रकट होता है, उन्होंने भोजन देने के साथ घण्टी बजाने का भी क्रम रखा। घण्टी बजाने के तुरन्त बाद ही भोजन दिया जाता था। इस क्रिया को अनेक बार करने के बाद देखा गया कि बिना भोजन दिए केवल घण्डी की आवाज से ही कुत्ता लार गिराने लगता था।

इस प्रकार घण्टी अस्वाभाविक उद्दीपन से लार स्वाभाविक अनुक्रिया का सम्बन्ध हो जाता है, जिसे अनुबद्ध अनुक्रिया कहते हैं। इसमें अनुक्रिया अर्जित तथा कृत्रिम होती है।

इस प्रयोग के आधार पर अनुबद्ध अनुक्रिया के प्रारुप को निम्न रूप में प्रस्तुत किया जाता है

उद्दीपन 1→ भोजन अनुक्रिया (लार)

उद्दीपन 2 → घण्टी

अर्थात् उद्दीपन 1+ उद्दीपन 2 → अनुक्रिया ... (1)

भोजन + घण्टी → लार ...(2)

S1+S2→R . . . . (3)

इस प्रयोग की साधारण व्याख्या यह है कि जब दो उद्दीपन दिए जाते हैं, तो उस समय पहली क्रिया और भी प्रभावशाली हो जाती है। वर्ष 1904 में पावलॉव ने इस सिद्धान्त को प्रतिपादित करते हुए इसकी व्याख्या इस प्रकार की थी

"अनुबद्ध अनुक्रिया के इस प्रयोग के तत्त्व सुविख्यात हैं। एक विशिष्ट उद्दीपन के फलस्वरूप जो प्रतिक्रिया आमतौर पर होती है, उसे छाँट लिया जाता है। यह माना जाता है कि यह उद्दीपन-अनुक्रिया प्राणी की एक मूल प्रवृत्ति का एक भाग है अर्थात् अधिगम है। अब मूल उद्दीपन के साथ एक नया उद्दीपन दिया जाता है। कुछ समय बाद जब मूल उद्दीपन को हटा लिया जाता है तब यह देखा जाता है कि नए उद्दीपन से भी वही अनुक्रिया होती है, जो मूल उद्दीपन से होती है, इस प्रकार अनुक्रिया नए उद्दीपन के साथ अनुबद्ध हो जाती है।"

अनुबद्ध अनुक्रिया के कारक

प्रेरक उद्दीपन अनुक्रिया के सम्बन्ध के लिए उद्दीपन की आवश्यकता होती है और उद्दीपन में अनुक्रिया उत्पन्न करने की सामर्थ्य होनी चाहिए।

- उद्दीपनों का एक-साथ प्रस्तुतीकरण स्वाभाविक तथा कृत्रिम उद्दीपनों को एक-साथ प्रस्तुतीकरण से अनुबद्ध अनुक्रिया सम्पादित होती है।
- उद्दीपनों की पुनरावृत्ति का विशिष्ट रुप अनुबद्ध अनुक्रिया के लिए यह आवश्यक होता है कि दोनों उद्दीपनों को एक-साथ कई बार दोहराया जाए।

www.studyofeducation.com

अनुबन्धन अनुक्रिया का शिक्षा में उपयोग

- अनुबद्ध अनुक्रिया धीरे-धीरे स्वभाव बन जाती है। स्वभाव का जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है।
- इस सिद्धान्त की सहायता से बालकों में अच्छी अभिवृत्तियाँ विकसित की जा सकती हैं।
- बच्चों में अक्षर विन्यास एवं गुण का विकास किया जा सकता है।
- मानसिक रुप से अस्वस्थ एवं संवेगात्मक रुप से अस्थिर बालकों के लिए उपचार में सहायक

बी. एफ. स्कीनर का सक्रिय अनुबद्ध सिद्धान्त

हार्वर्ड विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान के प्राचार्य बी एफ स्कीनर ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन चूहों तथा कबूतरों पर प्रयोग के आधार पर किया है। "सक्रिय-अनुबद्ध अनुक्रिया एक अधिगम प्रक्रिया है, जिसमें अनुक्रिया को पुनर्बलन द्वारा अधिक सम्भावित बनाया जाता है तथा सक्रिय व्यवहार को सबल बनाते अथवा पुनर्बलन देते हैं।"

स्कीनर ने चूहों, कबूतरों आदि पर अनेक प्रयोग किए और यह अवधारणा विकसित की कि दो प्रकार के व्यवहार प्राणियों में पाए जाते हैं-अनुक्रिया (Respondent) तथा सक्रिय (Operant)| अनुक्रिया का सम्बन्ध उद्दीपन से होता है और सक्रियता किसी ज्ञात उद्दीपन से नहीं जुड़ी होती, यह स्वतन्त्र होती है। सक्रिय व्यवहार किसी ज्ञात उद्दीपन से नहीं जुड़ा होता, इसलिए इसकी शक्ति को परावर्ती नियमों के द्वारा नहीं मापा जा सकता। अनुक्रिया की दर ही क्रिया शक्ति का मापन करती है।

स्कीनर का कबूतर पर प्रयोग

www.studyofeducation.com

स्कीनर ने कबूतरों पर सक्रिय अनुबद्ध के प्रयोग किए। कबूतर को स्कीनर बॉक्स में एक कुंजी दबाना सीखना था। आरम्भ में बॉक्स में हल्की प्रकाश व्यवस्था की गई। कबूतरों ने एक निर्धारित व्यवहार सीख लिया, इसका परीक्षण छ: विभिन्न प्रकार के प्रकाश रुपों में किया गया। कम से अधिक प्रकाश योजना में समय अन्तराल समान रखा गया। मूल उद्दीपन में तथा अन्य उद्दीपनों में यह देखा गया है कि कबूतरों ने नवीन उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया की। यह प्रवृत्ति मूल तथा नवीन उद्दीपन के प्रति पाई गई। इस प्रयोग में सामान्यीकरण के तत्त्वों को विशेष महत्त्व दिया गया है।

कुंजी में चोंच मारने की क्रिया सीखने में यह देखा गया कि जब भी प्रकाश में कुंजी को देखा गया, मूल उद्दीपन प्रकट हुआ। प्रकाश व्यवस्था में जैसे-जैसे अन्तर होता गया वैसे-वैसे अनुक्रिया कम होती गई। इस प्रयोग में यह शब्दावली की गई

SD (S-dee)→धनात्मक

SA (S-Delta)→ऋणात्मक

जब धनात्मक उद्दीपन प्रस्तुत किया जाता है तो उसके परिणामस्वरुप अधिगम अनुक्रिया अधिक मात्रा में प्रकट होती है। जब ऋणात्मक उद्दीपन (SD) प्रस्तुत किया जाता है, तो अनुक्रिया की गति कम हो जाती है। धनात्मक एवं ऋणात्मक उद्दीपन को पुरस्कार एवं दण्ड की संज्ञा दी गई है।

स्कीनर का चूहों पर प्रयोग

एक भूखे सफेद चूहे को स्कीनर बॉक्स में छोड़ा गया। यह बॉक्स ध्वनिरोधी था। बॉक्स की दीवार पर एक लीवर था जिसका सम्बन्ध स्वचालित मशीन से था। जिससे लीवर बनाने की अनुक्रिया का रिकॉर्ड स्वयं हो जाता था। लीवर दबाने से भोजन गोली के रुप में चूहे के सामने आ जाता था। यह देखा गया कि प्रारम्भ में चूहा बॉक्स में इधर-उधर घूमता रहा तथा दीवार को दाँतों से काटने का प्रयास करता रहा। फिर वह लीवर के पास गया, जिससे अचानक उससे लीवर दब गया और खाने के लिए गोलियाँ मिल गईं। बाद के प्रयासों में उसने बस में इधर-उधर घूमने में बहुत कम समय लगाते हुए सरलता से भोजन प्राप्त किया और अन्त में एक समय ऐसा आया कि उसने बॉक्स में छोड़े जाने पर सीधे लीवर दबाकर भोजन प्राप्त कर लिया। इस प्रकार उसने बॉक्स में लीवर दबाने की अनुक्रिया को सीख लिया।

इस प्रकार स्कीनर के उद्दीपन अनुक्रिया सिद्धान्तों (S-R Theories) में उद्दीपन को महत्त्व दिया जाता है, जिससे प्रतिवादी व्यवहार होता है, परन्तु स्कीनर के सिद्धान्त में अनुक्रिया उद्दीपन (R-S) के सम्बन्ध को महत्त्व दिया जाता है, क्योंकि सक्रिय व्यवहारों के लिए उद्दीपन प्रस्तुत नहीं किया जाता है, अपितु अनुक्रिया के लिए वातावरण उत्पन्न किया जाता है। जीव वातावरण में अपेक्षित अनुक्रिया करता है, तब उसे पुनर्बलन दिया जाता है, जिससे उसी प्रकार की अनुक्रियाओं की सम्भावना में वृद्धि होती है-एक उदाहरण से इस प्रत्यय को स्पष्ट कर सकते हैं-एक व्यक्ति अपने छोटे बच्चे के सामने गेंद फेंकता है और वह कहता है कि ऐसा करने से गेंद फेंकने की सम्भावना बढ़ती है और बालक गेंद फेंकता है तब वह व्यक्ति मुस्कराता है, जिससे उसे पुनर्बलन मिलता है। सक्रिय अनुबद्ध अनुक्रिया को निम्नलिखित रुप में प्रस्तुत किया जा सकता है

S →R →S

(उद्दीपन) →अनुक्रिया→ पुनर्बलन

उद्दीपन तथा पुनर्बलन स्वतन्त्र चर होते हैं, जिन पर अनुक्रिया एक आश्रित चर होती है। स्कीनर अधिगम के प्रारुप को तीन पक्षों में प्रस्तुत करते हैं। उद्दीपन को वातावरण के रुप में प्रस्तुत किया जाता है जिसमें जीव को अनुक्रिया करनी होती है, सही अनुक्रिया से पुनर्बलन मिलता है। उद्दीपन एक परिस्थिति या परिवर्तित वातावरण का रूप होता है, जो व्यवहार में परिवर्तन लाता है। अनुक्रिया व्यवहार की एक इकाई होती है, जो अनुक्रिया श्रृंखला को विकसित करती है। इसमें अनेक प्रकार की अनुक्रिया को सम्मिलित किया जाता है। अनुक्रिया सदैव बदलती रहती है। यह व्यवहार की एक कृत्रिम इकाई होती है।

अनुबद्ध सिद्धान्त का शिक्षा में उपयोग

- मानव के अधिगम तथा प्रशिक्षण में इस सिद्धान्त का उपयोग प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है। इस सिद्धान्त के प्रयोग से वह छात्रों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन कर सकता है।

www.studyofeducation.com

- इस सिद्धान्त ने शिक्षा तकनीकी अनुदेश तकनीकी तथा अभिक्रमित अनुदेशन का विकास किया है और अधिगम के विज्ञान और शिक्षण की कला के प्रत्ययों का विकास किया है। इस प्रकार इस सिद्धान्त के आधार पर शिक्षण प्रणाली में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया जा सकता है। .
- इस प्रणाली के आधार पर स्कीनर ने शिक्षण प्रतिमान का विकास किया है, जिसका मुख्य लक्ष्य व्यवहार परिवर्तन होता है।

हल्ल का पुनर्बलन सिद्धान्त

उद्दीपन सहायता क्लार्क हल्ल द्वारा प्रतिपादित पुनर्बलन का सिद्धान्त जीवन के सम्पूर्ण कार्यों को प्रस्तुत करता है। क्लार्क हल्ल ने इस सिद्धान्त को वर्ष 1915 में प्रतिपादित किया तथा मृत्युपर्यन्त इसका विकास करते रहे। हल्ल ने चूहों आदि पर प्रयोग किए तथा यह निष्कर्ष निकाला कि उद्दीपन तथा अनुक्रिया के मध्य सम्बन्ध **प्रणोदन और पुरस्कार** पर निर्भर है। प्रणोदन के सम्बन्ध में हल का विचार है-"यह शक्ति प्रणोदन का अनुभव करता है तब अनेक प्रकार के उद्दीपन उत्पन्न होते हैं। ये उद्दीपन व्यक्ति को उद्देश्य तक पहुँचाने में सहायक होते हैं या अनुक्रिया के सम्बन्ध बनाने तथा मानसिक संघर्ष को कम कराने में मिलती है। इसी के कारण पुनर्बलन दिया जाता है।"

हल्ल ने सिद्धान्त को प्रतिपादित करते हुए कहा है-"सिद्धान्त संख्या की दृष्टि से अपेक्षाकृत कम प्राथमिक सिद्धान्तों या अवधारणाओं से अवलोकित घटनाओं से द्वितीय सिद्धान्तों का विधिपूर्वक निगमनात्मक व्युत्पादन है। विज्ञान में कोई अवलोकित घटना तब व्याख्यात समझी जाती है, जबकि उसे प्रकट करने वाला तर्कवाक्य कुछ परिभाषाओं और अवधारणाओं से और उस घटना से पूर्व घरी अवलोकित परिस्थितियों से तर्कपूर्वक ढंग से प्रतिपादित किया गया है। संक्षेप में "भौतिक विज्ञानों में वैज्ञानिक सिद्धान्त और व्याख्या का सही स्वरुप कई शताब्दियों में सफल विकास के बाद माना तथा स्वीकार किया जाता है।"

हल्ल ने अधिगम के सिद्धान्त का प्रतिपादन एवं व्याख्या **17 स्वयं सिद्धियों (Postulates)** में की है। इन सिद्धान्तों का संशोधन भी उन्होंने किया था। इन स्वयं सिद्धियों में चौथी स्वयं सिद्धि पर अधिगम आधारित है। इस स्वयं सिद्धि के दो भाग हैं, प्रथम भाग कालिक अव्यवधान को वह अधिगम का महत्त्वपूर्ण अंश मानते हैं। स्वयं सिद्धि का दूसरा भाग पुनर्बलन की भूमिका से सम्बन्धित है और स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि चौथी स्वयं सिद्धि आदत तथा आदत की शक्ति की ओर है।

चेपलिन व काविस के अनुसार, हल्ल इस स्वयं सिद्धि से प्रसिद्ध अनुबद्ध संकेत करती अनुक्रिया सिद्धान्त के प्रयोग को आधार देता है, जहाँ अनुबद्ध प्रयोग (CS घण्टी), उद्दीपन अनुक्रिया (UR-लार) से सम्बद्ध होता है, जो भी हो यह कहा जा सकता है कि अव्यवधान अधिगम की आवश्यक दशा है, परन्तु यह पर्याप्त दशा नहीं है। हल्ल ने दो प्रकार के पुनर्बलन स्थापित किए हैं-प्राथमिक तथा द्वितीयक। जब किसी अनुक्रिया से आवश्यकता कम होती है तो हमें एक ऐसी परिस्थिति प्राप्त होती है, जिसे पुनर्बलन कहते हैं।

हल्ल ने अपने पुनर्बलन सिद्धान्त के प्रायोगिक परीक्षण को एक तालिका के माध्यम से समझाने का प्रयास किया। इसमें इन्होंने बताया है कि जीव पुनर्बलन के तहत उद्दीपन करता है। इस उद्दीपन को विभिन्न रुपों में देखा जा सकता है। उद्दीपन के पश्चात् जीव अनुक्रिया करता है और अन्ततः उसकी आवश्यकता की तुष्टि हो जाती है। इन सभी क्रियाविधियों में कार्यरत् स्वतन्त्र चर उद्दीपन, जीवन की आवश्यकता की तुष्टि तथा उसकी अनुक्रिया एवं स्वतन्त्र चर, हस्तक्षेपी चर तथा आश्रित चर को सन्दर्भित करते हुए हल्ल ने वर्ष 1952 में सभी अवधारणाओं पर विचार करके अन्तिम रुप इस प्रकार दिया, जिनका विवरण इस प्रकार है

सिद्धान्त का मूल्यांकन

हल्ल के अधिगम सिद्धान्त का आधार पुनर्बलन है। हल्ल ने इस विचार की पुष्टि के लिए निगमन प्रणाली प्रारुप दिया है। सिद्धान्त का विकास स्वयं सिद्धियों, परिकल्पनाओं आदि के माध्यम से किया गया है। हल्ल का विचार था कि यह मत समस्या का समाधान, समाज व्यवहार, अधिगम के प्रकार आदि को विस्तार दे सकता है। हल्ल ने इस बात पर बल दिया है कि आवश्यकता की पूर्ति के साथ तनाव समाप्त हो जाता है।

www.studyofeducation.com

पुनर्बलन सिद्धान्त का शिक्षा में उपयोग

- यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि विद्यालय की विभिन्न क्रियाओं में बच्चों को आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जाए।
- सफलता प्राप्त करने पर बालकों को पुरस्कार दिए जाएँ।
- कक्षा में पढ़ाई जाने वाली वस्तु के उद्देश्य स्पष्ट हों।
- आवश्यकता को पूर्ति के लिए शिक्षण होना चाहिए।

अधिगम के संज्ञानात्मक सिद्धान्त

अधिगम के कुछ प्रमुख संज्ञानात्मक सिद्धान्त का वर्णन निम्न प्रकार है

1. अधिगम का अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त

सूज द्वारा या अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त के प्रतिपादक मुख्य रुप से जर्मनी के गेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिक हैं। इनमें कोहलर वर्थीमर, लेविन तथा कोफ्का प्रमुख हैं। इस विचारधारा के वैज्ञानिकों का विचार है कि व्यक्ति प्रयत्न और भूल द्वारा नहीं सीखता, बल्कि वह स्वयं

की मानसिक शक्ति और बुद्धि के अनुसार समस्यापूर्ण परिस्थिति का प्रत्यक्ष निरीक्षण करता है तब किसी प्रकार की प्रतिक्रिया करता है। सोखने की प्रक्रिया समस्त परिस्थिति के सविकल्प प्रत्यक्ष के आधार पर घटित होती है। जब कोई प्राणी नवीन वातावरण में आता है, तब वह वातावरण के विभिन्न तत्त्वों या वस्तुओं के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है और वातावरण को भली-भाँति समझकर परिस्थिति के अनुकूल प्रतिक्रिया करता है। सम्पूर्ण परिस्थिति का समझ में आना और फिर प्रतिक्रिया करना, सूझ का परिचायक है, इसलिए इसे सूझ या अन्तर्दृष्टि द्वारा सीखना कहते हैं। यह क्षमता (सूझ) निम्न कोटि के पशुओं में नहीं पाई जाती। यह विधि पशुओं की अपेक्षा मनुष्यों पर ही सफलतापूर्वक लागू की जा सकती है, क्योंकि सूझ का सम्बन्ध बुद्धि चिन्तन तथा कल्पना से है। इस विधि द्वारा सीखने में मानसिक प्रयास किया जाता है।

कोहलर महोदय के प्रयोग

कोहलर महोदय ने अन्तर्दृष्टि द्वारा अधिगम के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए। यहाँ पर कुछ प्रयोगों का विवरण दिया जा रहा है, जिससे कि अधिगम का यह सिद्धान्त स्पष्ट किया जा सके

प्रयोग 1 कोहलर ने एक चिम्पैंजी को पिंजरे में बन्द किया तथा उसमें एक छड़ी रख दी। पिंजरे से कुछ दूरी पर केले रख दिए। केले इतनी दूरी पर थे कि उन तक चिम्पैंजी का हाथ नहीं पहुँच सकता था। चिम्पैंजी केले खाने के लिए व्याकुल होने लगा और उसने उन्हें प्राप्त करने के लिए अनेक प्रयास किए, परन्तु उसका हाथ उन तक नहीं पहुंच पा रहा था। तभी उसकी नजर छड़ी पर पड़ी और उसने छड़ी तथा केलों के मध्य सम्बन्ध स्थापित कर लिया। उसने छड़ी को उठाया और उसकी सहायता से केले प्राप्त कर लिए।

प्रयोग 2 दूसरे प्रयोग में कोहलर ने पिंजरे में ऐसी दो छड़ियाँ रखीं, जिनको आपस में जोड़ा जा सकता था, केले पिंजरे से बाहर इतनी दूरी पर रखे गए कि उनको तभी प्राप्त किया जा सकता था, जबकि दोनों छड़ियों को जोड़कर एक बना दिया जाए। चिम्पैंजी ने पहली बार एक छड़ी की सहायता से केले पाने के प्रयास में असफल रहा। अनेक बार प्रयास करने के उपरान्त भी जब सफलता नहीं मिली, तो उसने दोनों छड़ियों को उठा लिया और देखने लगा इसके बाद उसने दोनों छड़ियों को जोड़कर केले प्राप्त कर लिए। .

प्रयोग 3 इस प्रयोग में कोहलर ने प्रयोग की परिस्थिति में कुछ परिवर्तन किया। उसने पिंजरे में एक बक्सा रखा और पिंजरे की छत से केलों को टाँग दिया। केले इतनी ऊँचाई पर टंगे थे कि वह उछलकर भी उन तक नहीं पहुँच सकता था। चिम्पैंजी केले प्राप्त करने के लिए काफी उछल-कूद करता रहा परन्तु केले न पा सका। थककर वह एक कोने में बैठ गया तभी उसकी दृष्टि बक्से पर पड़ी तथा वह बक्से व केले में सम्बन्ध जोड़ने में सफल रहा, उसने बक्से को केले के नीचे रखा, वह उसके ऊपर चढ़ा और केले प्राप्त करने में सफल रहा।

www.studyofeducation.com

प्रयोग 4 इस प्रयोग में कोहलर ने एक के स्थान पर दो सन्दूक रखे तथा केलों को इतनी ऊँचाई पर लटकाया कि चिम्पैंजी दोनों बक्सों के ऊपर चढ़कर ही केले प्राप्त कर सकता था। पहले चिम्पैजी ने एक ही बक्सा रखा तथा उस पर चढ़कर केले प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा, पर असफल रहा। कुछ देर प्रयत्न करने के उपरान्त उसकी दृष्टि दूसरे सन्दूक पर पड़ी तथा उसने सन्दूक के ऊपर दूसरा सन्दूक रखा तथा केले प्राप्त कर लिए।

नन्हीं बच्ची पर प्रयोग

कोहलर ने इस प्रयोग में 15 माह की एक नन्हीं बच्ची, जिसने कि कुछ सप्ताह पूर्व ही चलना सीखा था, से दो मीटर की दूरी पर एक खिलौना रख दिया। उसके दूसरी ओर एक बाधा उत्पन्न कर दी अर्थात् सन्दूक आदि रख दिए, उसने खिलौने को देखा, धीरे से एक ओर खिसकी फिर मुस्कुराई और सन्दूक के दूसरी ओर घूमकर खिलौने के पास चली गई। कोहलर के प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया कि पशु में अन्तर्दृष्टि उत्पन्न होने से पूर्व समस्या के सभी अंगों के मध्य सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है, तभी वह उनका पुनर्गठन कर सकता है। यहाँ पर एक बात स्पष्ट है कि पशुओं में अन्तर्दृष्टि से पूर्व प्रयास तथा त्रुटि पाया गया था। एक बार समस्या का समाधान कर लेने पर पशुओं में अनुभवों का स्थानान्तरण पाया गया। अन्तर्दृष्टि का निकट सम्बन्ध पशु की शक्ति पर निर्भर करता है। कोहलर ने समग्रवाद में अन्तर्दृष्टि को इस प्रकार बताया है कि "एक अधिक तकनीकी अर्थ में अन्तर्दृष्टि का अर्थ हल को एकाएक पकड़ लेना है, जिससे एक ऐसी प्रक्रिया आरम्भ होती है जो परिस्थिति के अनुसार चलती है और समाधान प्रत्यक्ष ज्ञान के क्षेत्र में संख्या के सन्दर्भ से होता है।"

www.studyofeducation.com

अन्तर्दृष्टि पर प्रभाव डालने वाले कारक

बुद्धि अन्तर्दृष्टि का सम्बन्ध प्राणी की बुद्धि से होता है। चिम्पैंजी की अपेक्षा में अधिक बुद्धि होती है, इसलिए उसमें अन्तर्दृष्टि अधिक पाई मनुष्य जाती है।

अनुभव अनुभवों से किसी समस्या को सुलझाने में बहुत योग मिलता है। अनुभवी व्यक्ति समस्या को सुलझाने में सदैव अन्तर्दृष्टि का लाभ उठाते हैं। अनुभवों का स्थानान्तरण एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति में होता है और वे अन्तर्दृष्टि के विकास में महत्त्वपूर्ण योग देते हैं।

प्रत्यक्षीकरण जब तक समस्या का पूर्णरुपेण प्रत्यक्षीकरण नहीं होता तब तक अन्तदृष्टि सम्भव नहीं है। अन्तर्दृष्टि पर समस्या की रचना भी प्रभाव डालती है।

प्रयास तथा त्रुटि कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि अन्तर्दृष्टि के मूल प्रयास तथा त्रुटि रहती है। क्रिया कोई भी हो उसके मूल में प्रयत्न अवश्य ही रहते हैं।

अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त का शिक्षा में प्रयोग

सूझ के सिद्धान्त के अनुसार, शिक्षकों को शिक्षार्थियों में सूझ उत्पन्न करने के उद्देश्य से विषय या पाठ के सभी पक्षों का खुला अवलोकन करना चाहिए, क्योंकि यदि ऐसा नहीं किया जाएगा, तो छात्र विषय के भिन्न-भिन्न भागों के बीच के प्रत्यक्षणात्मक सम्बन्ध को नहीं समझ पाएँगे तथा उनमें सूझ उत्पन्न नहीं होगी। यदि विषय या पाठ का कोई भी भाग या अंश छात्रों से छिपा लिया जाता है, तो छात्र उनके प्रत्यक्षणात्मक सम्बन्ध को विकसित नहीं कर पाएँगे और वह प्रयत्न एवं भूल द्वारा सीखने का प्रयत्न करने लगेंगे।

लेविन का क्षेत्र सिद्धान्त

कर्ट लेविन एक जर्मन मनोवैज्ञानिक थे जो बाद में अमेरिका जाकर बस गए थे तथा वहाँ के विश्वविख्यात विद्यालयों स्टेनफोर्ड तथा इओवा में अध्यापन करने लगे। मनोविज्ञान के क्षेत्र सिद्धान्त से इनका नाम विशेष रुप से जुड़ा है। लेविन का क्षेत्र सिद्धान्त सामान्य शब्दावली में यह कहता है कि "मानव व्यवहार व्यक्ति तथा वातावरण दोनों का प्रतिफल है, जिसे सांकेतिक रुप में B = f (PE) द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।" अपनी इस सांकेतिक शब्दावली B= f (PE) में लेविन ने ,B को व्यवहार (Behaviour) P को व्यक्ति (Person) E को वातावरण (Environment) के लिए प्रयुक्त किया है। लेविन ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है कि यहाँ यानी व्यक्ति से उनका आशय एक मनोवैज्ञानिक व्यक्ति से है, जैविक प्राणी से नहीं। इस प्रकार E से तात्पर्य व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक वातावरण है उसके वर्तमान में स्थित भौतिक तथा सामाजिक वातावरण से नहीं।

F अक्षर को जो इस प्रकार के समीकरण में 'Function' यानी प्रक्रिया लिए प्रयुक्त होता है। लेविन ने यहाँ उसे Field (क्षेत्र) या Life Space (जीवन दायरे) के लिए प्रयुक्त किया है तथा इसे मनोवैज्ञानिक व्यक्ति (CP) तथा मनोवैज्ञानिक वातावरण (E) की अन्त:क्रिया के रूप में मान्यता दी है। किसी एक परिस्थिति में एवं किसी एक विशेष समय में व्यवहार करने या सीखने के लिए व्यक्ति अपने जीवन दायरे (Life Space) या क्षेत्र का किस प्रकार संगठन एवं पुनः संगठन करता है? इस बात को समझने के लिए लेविन ने भौतिकशास्त्र तथा मैकेनिक्स से सम्बन्धित कुछ विशेष शब्दावली जैसे सदिश तलरुप आदि का उपयोग किया है। उसको देखते हुए लेविन द्वारा प्रतिपादित विचार प्रणाली को टोपोलॉजीकल साइकोलॉजी या वेक्टर साइकोलॉजी का नाम भी दिया जाता है। मानव व्यवहार एवं अधिगम को स्पष्ट करने वाला लेविन का यह क्षेत्र सिद्धान्त तीन पदो को लेकर चलता है

लाइफ स्पेस (जीवन दायरा)

www.studyeducation.com

किसी व्यक्ति के जीवन दायरे को मनोवैज्ञानिक क्षेत्र का नाम भी दिया जाता है। लेविन के सूत्र B = f (PE) में द्विारा चिह्नित व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक क्षेत्र अथवा जीवन दायरा और कुछ नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक व्यक्ति (P) तथा उसके मनोवैज्ञानिक वातावरण (E) की अन्तःक्रिया का प्रतिफल होता है।

वेक्टर्स एवं वेलेन्स (कर्षण)

लेविन द्वारा वेक्टर एवं कर्षण शक्ति शब्द और उनकी अवधारणा भौतिकशास्त्र एवं मैकेनिक्स से ग्रहण की गई है। वेक्टर पद को लेविन ने अपने क्षेत्र सिद्धान्त में उस शक्ति के लिए प्रयोग में लिया है, जो व्यक्ति को लक्ष्य के पास-दूर ले जाती है। यदि व्यक्ति के जीवन में एक ही वेक्टर कार्यरत है तो वह उसे अपने में निहित शक्ति के बल पर अपनी दिशा में खींच ले जाएगा, परन्तु अगर कई वेक्टर कार्यरत हैं और वे अलग-अलग दिशाओं में खींचने की कोशिश कर रहे हैं, तब निष्कर्ष रूप में वेक्टरों की शक्ति जिस दिशा में ज्यादा होगी, लक्ष्य को पाने या उसमें बाधा खड़ी होने की बात उतनी ही प्रबल होगी। किसी व्यक्ति के जीवन दायरे में किसी एक परिस्थिति में किस क्षण किस प्रकार के वेक्टर्स कार्यरत हैं इसकी जानकारी हमें व्यक्ति के व्यवहार, अधिगम एवं विकास प्रक्रिया की वर्तमान स्थिति तथा भविष्य में क्या होने वाला है? यह बताने में सक्षम सिद्ध हो सकती है।

www.studyofeducation.com

टोपोलॉजी

टोपोलॉजी की अवधारणा लेविन ने गणित से ग्रहण की है। गणित में इसका प्रयोग दूरी व स्थान को लेकर ज्यामितीय आकृतियों का अपेक्षाकृत स्वरुप तय करने के लिए किया जाता है। इसे व्यक्त करने के लिए अन्दर-बाहर तथा सीमा रेखा आदि शब्दावली प्रयोग की जाती है। इस प्रकार से टोपोलॉजी की भाषा में वस्तुओं की उनकी लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई, क्षेत्रफल और आयतन के हिसाब से व्याख्या न करके कौन किसके बाहर है, कौन भीतर है, कौन पीछे है, कौन आगे है? इस प्रकार की शब्दावली द्वारा व्याख्या की जाती है। इसी कारण टोपोलॉजी की भाषा में वृत्त, अण्डाकार आकृति तथा अनियमित बहुभुज में उनकी रचना तथा आकृतियों में इतनी विभिन्नता आते हुए भी कोई फर्क नहीं माना जाता है।

क्षेत्र सिद्धान्त का शिक्षा में उपयोग

क्षेत्र सिद्धान्त में व्यक्ति को एक मनोवैज्ञानिक व्यक्ति माना जाता है, जो भौतिक एवं सामाजिक वातावरण से अलग एक मनोवैज्ञानिक वातावरण में विचरण कर रहा होता है। अतः उसका अधिगम पूरी तरह प्रयोजनशील लक्ष्योन्मुखी तथा विवेकपूर्ण होता है, जिसमें अन्तःदृष्टि तथा सूझबूझ का बोलबाला रहा है। यह व्यवहारवादियों की तरह मशीनी तथा पूर्व अनुभवों तथा आदतों पर निर्भर नहीं करता और न मनोविश्लेषणवादियों की तरह अचेतन मन और आन्तरिक प्रवृत्तियों में संचालित रहता है।

टॉलमैन का अधिगम सिद्धान्त

एडवर्ड सी. टॉलमैन ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन 'पशुओं तथा मनुष्यो' में उद्देश्यात्मक प्रेरक प्रयास की ओर तथा कुछ निबन्धों में किया है। टॉलमैन व्यवहारवादी थे। उन्होंने व्यवहार को परमाणु विलयन तथा आण्विक (Molecular) की भाँति समझा है। इसका आधार स्नायु मांसपेशियाँ तथा ग्रन्थियाँ हैं। अनेक चिह्न अधिगम के समय उभरते हैं, इसलिए टॉलमैन का सिद्धान्त चिह्न समग्र (Sign Gestalt) मत भी कहा गया है। टॉलमैन के इस सिद्धान्त का आधार समग्रवाद है। टॉलमैन की मान्यता है कि मानव का व्यवहार उद्देश्यपूर्ण होता है। अधिगम के चिह्न तथा आशाओं को वह अधिक महत्त्व देता है। उसके अनुसार उद्दीपन में अर्थ उसी समय उत्पन्न होता है, जबकि वह व्यक्ति की आवश्यकता और उद्देश्यपूर्ति में सहायक होते हैं। टॉलमैन ने भावानिवेश को अधिगम का एक स्वरुप स्वीकार किया है।

टॉलमैन का यह मत प्रयोजनवादी मनोविज्ञान पर आधारित है। यह प्रयोजन की किस क्रिया को सीखने का केन्द्र बिन्दु मानता है। जी लेस्टर एण्डरसन के अनुसार टॉलमैन के सिद्धान्त में केवल गतियों का ही अधिगम नहीं प्राप्त किया जाता है बल्कि चिह्नों या आशाओं का अधिगम भी प्राप्त किया जाता है। क्रमिक परिस्थितियों में गतियों को एक जैसा नहीं माना जा सकता। अधिगम परिस्थिति को प्रत्यक्ष रुप से मापता है और इन प्रत्यक्ष ज्ञानों से यान्त्रिक यह सम्बन्ध होते हैं, परन्तु उनका स्वरुप अभी ज्ञात नहीं है। टॉलमैन के सिद्धान्त में ज्ञानात्मक व्यवहार को महत्त्व दिया गया है। टॉलमैन का मत उद्देश्यात्मक व्यवहार पर निर्भर करता है। चिह्न गेस्टाल्ट, सम्भावना सिद्धान्त और ज्ञानात्मक सिद्धान्त के इस मत को निम्नलिखित नामों से भी पुकारा जाता है।

www.studyofeducation.com

अधिगम सिद्धान्त का शिक्षा में प्रयोग

टॉलमैन का मत शिक्षा में धारणाओं की व्याख्या करता है। यद्यपि अध्यापक ज्ञानात्मक रचना, चिह्न आदि शब्दों का प्रयोग तो नहीं करते, परन्तु अध्यापन के समक्ष इसका क्या अर्थ है? क्या समझें? आदि वाक्यों का प्रयोग टॉलमैन के सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं।

टॉलमैन के अनुसार, "उन लोगों का व्यवहार जो अधिगम प्राप्त करते हैं गतियों की अन्य यान्त्रिक श्रृंखला प्रदर्शित नहीं करता, बल्कि यह प्रदर्शित करता है कि व्यवहार में बुद्धि कार्य करती है।" अध्यापक को चाहिए कि वह कक्षा के मानसिक तथा शारीरिक स्तर तथा आकांक्षाओं को ध्यान में रखे।

ब्रूनर के अधिगम का सिद्धान्त

जीरोम ब्रूनर ने (1960) सीखने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जिसे आधुनिक संज्ञानात्मक सिद्धान्त की श्रेणी में रखा गया है। इनके अधिगम सिद्धान्त की उपयोगिता शिक्षा क्षेत्र में अधिक बताई गई है। वास्तव में यदि देखा जाए तो ब्रूनर ने अपने अधिगम

सिद्धान्त का प्रतिपादन कक्षा में छात्रों द्वारा किए गए उन सभी व्यवहारों को ध्यान में रखते हुए किया है जो सीखने से सम्बन्धित होते हैं।

ब्रूनर के अधिगम सिद्धान्त की व्याख्या निम्नांकित भागों में की जा सकती है|

अन्तर्दशी चिन्तन अथवा विश्लेषणात्मक चिन्तन ब्रुनर का मत है कि कक्षा के शिक्षण में शिक्षकों द्वारा अन्तर्दर्शी चिन्तन पर विश्लेषणात्मक चिन्तन की अपेक्षा बहुत कम ध्यान दिया जाता है, जबकि वास्तविकता यह है कि अन्तर्दर्शी चिन्तन का महत्त्व विषयों या पाठों को सीखने में कहीं अधिक है। किसी विषय या पाठ का तात्विक ज्ञान या संज्ञान को ही अन्तर्दर्शन कहा जाता है। ब्रूनर के शब्दों में, अन्तर्दर्शन से तात्पर्य ऐसे व्यवहार से होता है, जिसमें अपने विश्लेषणात्मक उपायों पर बिना कोई निर्भरता दिखाए समस्या की संरचना एवं महत्त्व को समझा जाता है।

विषय की संरचना ब्रूनर का मत है कि प्रत्येक विषय अथवा पाठ में कुछ विशेष सम्प्रत्यय नियम एवं प्रविधियाँ होती हैं, जिससे छात्रों को सीखना अनिवार्य होता है। इस प्रकार ब्रूनर का मत था कि प्रत्येक विषय की अपनी एक संरचना होती है और स्कूल के छात्रों के लिए इस संरचना को सीखना आवश्यक है। शिक्षकों को इन संरचनाओं को अर्थात् उसके सम्प्रत्यय, नियम एवं प्रविधियों को सिखाने पर अधिक बल डालना चाहिए। .

www.studyeducation.com

अन्वेषणात्मक अधिगम ब्रूनर ने इस बात पर विशेष बल दिया है कि कक्षा में किसी विषय या पाठ को सीखने की सबसे उत्तम विधि अन्वेषणात्मक सीखना है। दूसरे शब्दों में छात्र को किसी समस्या के विभिन्न पहलुओं पर स्वयं ही आगमनात्मक चिन्तन करके विषय से सम्बन्धित सम्प्रत्ययों के अर्थ एवं सम्बन्धों की खोज करनी चाहिए। इसका अर्थ यह है कि शिक्षक को इस नियम में विश्वास रखना चाहिए कि ज्ञान आत्म-अन्वेषित होता है, क्योंकि ऐसे ज्ञान जो छात्रों द्वारा आत्म-अन्वेषित होते हैं, उनके लिए अधिक सार्थक होते हैं।

सम्बद्धता का महत्त्व ब्रूनर के अनुसार, विद्यालय तथा शिक्षण का सबसे महत्त्वपूर्ण लक्ष्य छात्रों का भविष्य उज्ज्वल बनाना है। इन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दी रेलिवेन्स ऑफ एजुकेशन' में दो प्रकार की सम्बद्धता का वर्णन किया है-सामाजिक सम्बद्धता तथा व्यक्तिगत सम्बद्धता। ब्रूनर के अनुसार, "शिक्षा केवल व्यक्तिगत रूप से ही नहीं वरन् सामाजिक उद्देश्यों तथा लक्ष्यों के भी अनुरूप होनी चाहिए। उनके अनुसार विद्यालय में दी जाने वाली शिक्षा का सम्बन्ध व्यक्तिगत सम्बद्धता तथा सामाजिक सम्बद्धता दोनों से होता है।"

तत्परता ब्रूनर ने बालकों के सीखने की तत्परता की विभिन्न दृष्टिकोणों से व्याख्या की है। उनके अनुसार प्रत्येक आयु वर्ग के छात्रों के अनुसार पाठ्यक्रम तैयार करके छात्रों को पाठ्यक्रमानुसार सीखने हेतु तत्पर बनाना चाहिए। किसी भी आयु के बालक को सीखने के लिए तत्पर किया जा सकता है। अत: शिक्षकों को सर्वप्रथम छात्रों को सीखने के लिए तैयार करना चाहिए, ताकि वे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सक्रिय होकर भाग लें।

शिक्षार्थी द्वारा स्वयं कार्य करने का महत्त्व ब्रूनर का मानना था छात्रों को सीखने की परिस्थिति में निष्क्रिय न होकर सक्रिय होकर भाग लेना चाहिए। इसके दो लाभ हैं- पहला छात्र पाठ अथवा विषय ठीक प्रकार समझ सकेंगे तथा दूसरा छात्र जल्दी सीखेगा तथा अर्जित ज्ञान अधिक दिनों तक याद रहेगा।

अधिगम के संज्ञानात्मक उपागम (Cognitive Approaches of Learning)

क्लासिको अनुबन्ध तथा साधनात्मक अनुबन्ध के अलावा सीखने का एक पहलू है, जिसमें मनोवैज्ञानिकों ने अधिक रुचि दिखाई ही सजानाका एक और वैसे सीखने को कहा जाता है, जो प्राणी के संज्ञान पर आधारित होता है, संज्ञान से तात्पर्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा पर्यावरण या वातावरण के बारे में मिलने वाली सूचनाओं के संसाधन से होता है तथा इसमें प्रत्यक्षण, अवधान, चिन्तन, स्मृति आदि को प्रक्रियाएँ मुख्य रुप से सम्मिलित होती हैं।

किसी भी संज्ञानात्मक प्रक्रिया में कम-से-कम निम्नलिखित छः तथ्य सम्मिलित होते है

1. सूचनाओं का चयन करना।
2. चयनित सूचनाओं में यथासम्भव हेर-फेर या परिवर्तन करना।
3. ऐसी सूचनाओं के बीच आपस में साहचर्य स्थापित करना।
4. इन सूचनाओं पर गम्भीर रुप से चिन्तन कर उसे विस्तारित करना।
5. ऐसी सूचनाओं को स्मृति में संचित करना। मानव
6. ऐसी संचित सूचनाओं को पुनः प्राप्त करना।

संज्ञानात्मक प्रक्रिया में व्यक्ति वातावरण से प्राप्त सूचनाओं में से कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनाओं को चुनकर उनका आपस में सम्बन्ध स्थापित कर अपनी स्मृति संचयन में भविष्य के लिए रख लेता है अर्थात् संज्ञानात्मक सीखना वैसे सीखने को कहा जाता है जिसमें प्राणी वातावरण की घटनाओं के बीच नए सम्बन्ध का प्रत्यक्षण करता है तथा उनके बीच नए साहचर्य की स्थापना करता है। संज्ञानात्मक सीखने को दिखाने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने कई प्रयोग किए जिनमें से प्रमुख प्रयोग निम्नलिखित है

यह प्रयोग चार वनमानुषों पर किया गया। इन चार वनमानुषों को कुछ दिनों तक एक विशेष मैदान में छोड़ दिया गया ताकि वे इसमें घूम-घूम कर उसकी विस्तृतता को ठीक तरह से समझ सकें या उसकी परख कर सकें। इसके बाद उस मैदान में एक वनमानुष को साथ लेकर जगह-जगह पर (कुल 16 जगहों पर) खाने की वस्तुएँ छिपा दी गईं। वह वनमानुष इन सभी जगहों को देखता गया।

www.studyofeducation.com

इसके बाद फिर उस वनमानुष को इस मैदान से कुछ देर के लिए अलग कर दिया गया कुछ समय बाद उसे उसी मैदान में अन्य तीन वनमानुषों के साथ छोड़ दिया गया।

यह प्रक्रिया बारी-बारी से तीन अन्य वनमानुषों के साथ दोहराई गई, जिसमें प्रत्येक के लिए अलग-अलग अठारह बिन्दु पर भोजन छिपाकर रखे गए थे। परिणाम में देखा गया कि जिस वनमानुष को यह पता होता था कि कहाँ-कहाँ भोजन छिपाया गया है, वह तो ठीक एक-एक करके उन सभी बिन्दुओं पर छिपाए गए भोजन की खोज कर लेता था, किन्तु जिस वनमानुष को यह पता नहीं था कि भोजन कहाँ छिपाया गया है। वे इन बिन्दुओं की तलाश में कुछ यादृच्छिक व्यवहार (Random Behaviour) करते पाए गए। प्रयोग के परिणाम से पता चला कि प्रत्येक वनमानुष (जिसे यह मालूम था कि भोजन किन बिन्दुओं पर छिपा कर रखा गया है) द्वारा भोजन खोजने का प्रयास एक विशेष नियम जिसे न्यूनतम दूरी का सिद्धान्त कहा जा सकता है, द्वारा नियन्त्रित हो रहा था। वनमानुष उस बिन्दु पर पहले भोजन खोजता पाया गया जो पहले बिन्दु जहाँ उसे भोजन मिल चुका था, के सबसे कम दूरी पर होता था। अत: कहा जा सकता है कि वनमानुष द्वारा किए जा रहे भोजन की खोज यादृच्छिक नहीं था।

यह विभिन्न खोज बिन्दुओं के आपसी सम्बन्ध को समझ रहा था और मैदान की अन्य वस्तुओं; जैसे-घास, पेड़ आदि को भी ऐसा सम्बन्ध स्थापित करने में ध्यान से ले रहा था। इस प्रयोग में वनमानुष स्पष्टतः भोजन बिन्दुओं के स्थानों को देखकर यह सीख लिया कि वे कहाँ-कहाँ अवस्थित हैं। इस तरह के सीखने को संज्ञानात्मक सीखना कहा जाता है।

www.studyofeducation.com

सामाजिक अधिगम सिद्धान्त (Theory of Social Learning

सामाजिक अधिगम सिद्धान्त का प्रतिपादन अल्बर्ट बंडूरा (Albert Bandura) ने किया था। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति अवलोकन, नकल और आदर्श व्यवहार के प्रतिमान के माध्यम से एक-दूसरे से सीखते हैं। समाज द्वारा स्वीकार किए जाने वाले व्यवहार को अपनाना तथा वर्जित व्यवहार को ना करना ही सामाजिक अधिगम है।

सामाजिक अधिगम सिद्धान्त को व्यवहारवाद और संज्ञानात्मक अधिगम सिद्धान्तों के बीच की योजक कड़ी कहा जाता है, क्योंकि यह सिद्धान्त ध्यान, स्मृति और प्रेरणा तीनों को संयोजित करता है। इसलिए **अल्बर्ट बंडूरा को प्रथा व्यवहार-संज्ञानवादी कहते हैं।**

बंडूरा का प्रयोग

बंडूरा ने एक बालक पर बेबीडॉल प्रयोग किया। इसके लिए बंडूरा बालक को तीन तरह की फिल्में दिखाई।

- **प्रथम** इस फिल्म में बालक को सामाजिक मूल्य आधारित पहलू दिखाए गए जिसे देखकर बालक बेबी डॉल के साथ सामाजिक व्यवहार दर्शाता है।
- **दूसरी** यह फिल्म प्रेम पर आधारित थी जिसे देखकर बालक बेबी डॉल से स्नेह करता है, उसे सहलाता है।
- **तीसरी** यह फिल्म हिंसात्मक दृश्य-युक्त थी। जिसे देखकर की गर्दन को तोड़ देता है।

इस प्रयोग के आधार पर बंडूरा ने यह निष्कर्ष निकाला कि छोटे बच्चों को यह नहीं पता होता कि उनको क्या सीखना चाहिए और क्या नहीं सीखना चाहिए। इसलिए बच्चों के समक्ष सदैव आदर्श व्यवहार के प्रतिमान को प्रस्तुत करना . चाहिए।

सामाजिक अधिगम के उपाय

बंडूरा ने सामाजिक अधिगम के निम्नलिखित चार उपाय बताए हैं

ध्यान अधिगम विषयवस्तु (जिसको सीखना है) को आकर्षक तथा प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत करना ध्यान/अवधान कहलाता है।

अवधारणा या धारण करना इसके अन्तर्गत यह देखा जाता है कि अधिगम के लिए प्रस्तुत किए गए विषय-वस्तु को कितना सीखा गया है।

पुनः प्रस्तुतीकरण यदि उक्त वस्तु का अधिगम कम प्रभावशाली हो तो ऐसी स्थिति में अधिगम की विषय-वस्तु को पुनः प्रस्तुत करना चाहिए। यथा छात्र किसी विषय-वस्तु को कम सीख पाते हैं तो उसको पुनः दोहराना चाहिए तथा सिखाने के लिए मॉडल, चित्र, चार्ट आदि सामग्री का उपयोग करना चाहिए।

पुनर्बलन विषय-वस्तु को पुनः प्रस्तुतीकरण के पश्चात् यदि बालक अधिगम की प्रतिपुष्टि कर दे तो यह प्रतिपुष्टि ही पुनर्बलन है। यदि छात्र उसे सही तरह सीख लेता है, तो उसकी प्रशंसा द्वारा उसे प्रेरित करना चाहिए।

www.studyofeducation.com

सामाजिक अधिगम के कारक

बंडूरा ने सामाजिक अधिगम के निम्नलिखित कारक बताए हैं

- अभिप्रेरणा (Motivation)
- स्वनियन्त्रण (Self-Control)
- स्वविवेक (Self Discretion)
- स्वनिर्णय (Self Decision)
- स्वअनुक्रिया (Self Response)

सामाजिक अधिगम को प्रभावित करने वाले अन्य कारक

सामाजिक अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है

अधिगमकर्ता से सम्बन्धित कारक

अधिगमकर्ता का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य कैसा है, उसकी क्षमता कितनी है, वह क्या हासिल करना चाहता है, उसके जीवन का उद्देश्य क्या है, इन बातों पर उसके सीखने की गति, इच्छा एवं रुचि निर्भर करती है।

अधिगमकर्ता से सम्बन्धित कुछ महत्त्वपूर्ण कारक निम्नलिखित हैं

छात्र सम्बन्धी कारक

- शारीरिक स्वास्थ्य-स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क होता है।
- मानसिक योग्यताएँ, बौद्धिक स्तर बुद्धि-लब्धि 90 से अधिक।
- सामाजिक विकास तथा समायोजन।
- संवेगात्मक सन्तुलन
- अध्ययन के प्रति रुचि तथा लगन।
- छात्र का आकांक्षा स्तर।
- अध्ययन के प्रति सकारात्मक अभिरुचि शिक्षक की मानसिक योग्यता तथा बौद्धिक क्षमताएँ।

www.studyofeducation.com

शिक्षक से सम्बन्धित कारक

अधिगम की प्रक्रिया को प्रभावित करने में शिक्षक की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। अध्यापक का विषय पर कितना अधिकार है, वह शिक्षण कला में कितना योग्य है, उसका व्यक्तित्व एवं व्यवहार कैसा है, इन सबका प्रभाव बालक के अधिगम, इसकी मात्रा एवं इसकी गति पर पड़ता है। अध्यापक के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का भी बालक के अधिगम से सीधा सम्बन्ध होता है। एक स्वस्थ शिक्षक ही सही ढंग से बच्चों को पढ़ा सकता है।

शिक्षक सम्बन्धी कारक

- शिक्षक की शारीरिक रचना तथा आकार।
- शिक्षक की शैक्षिक उपलब्धियाँ।
- अध्यापक प्रशिक्षण की योग्यता।
- शिक्षण विधियों एवं प्रविधियों का ज्ञान एवं कौशल।
- अभिप्रेरणा तथा पुनर्बलन का बोध व प्रविधियों का ज्ञान व कौशल।
- कक्षा प्रबन्धन की क्षमता।

www.studyofeducation.com

पाठ्यवस्तु से सम्बन्धित कारक

अधिगम की प्रक्रिया में अध्यापक एवं छात्रों द्वारा पाठ्यवस्तु को प्रयोग में लाया जाता है। यदि विषय उनके अनुकूल न हो तो इसका अधिगम पर भी प्रभाव पड़ता है। विषय-वस्तु बालक की रुचि के अनुकूल है या नहीं, उसकी प्रस्तुति किस प्रकार की है, इन सब बातों का प्रभाव बालक के अधिगम पर पड़ता है। यदि विषय-वस्तु बालक की रुचि के अनुरुप नहीं है, तो वह इसे सीखना नहीं चाहता। ये कारक निम्नलिखित हैं

- पाठ्यवस्तु की प्रकृति (कहना, करना, प्रदर्शन करना)।
- पाठ्यवस्तु का विश्लेषण तथा संश्लेषण (तत्त्वों में विभाजन) प्रत्यय सिद्धान्त; तथ्य, अधिनियम, भाषा, सामान्यीकरण विभेदीकरण आदि।
- अनुदेशन प्रक्रिया का विकास (तार्किक क्रम में व्यवस्थित करना)।
- पाठ्यवस्तु से उद्देश्यों का प्रतिपादन करना।
- पाठ्यवस्तु के प्रस्तुतीकरण हेतु विधियों एवं प्रविधियों का चयन करना।

- पाठ्यवस्तु के आधार पर अधिगम परिस्थितियों का निर्धारण करना।
- पाठ्यवस्तु के आधार पर शिक्षण सूत्रों का उपयोग करना।

प्रक्रिया से सम्बन्धित कारक

अधिगम प्रक्रिया, विषयवस्तु प्रस्तुत करने का तरीका एवं शिक्षण शैली आदि भी अधिगम को प्रभावित करती है। यदि विषयवस्तु को गलत तरीके से प्रस्तुत किया जाए तो बालक को इसे समझने में मुश्किल होती है। इसी के साथ शिक्षक किन विधियों युक्तियों एवं सिद्धान्तों का प्रयोग शिक्षण प्रक्रिया में कर रहा है। यह भी बालक की अधिगम दर को प्रभावित करता है। इसलिये शिक्षकों को बालकों के मानसिक स्तर के अनुसार शिक्षण विधियों का प्रयोग करना चाहिये ताकि बालक अधिगम प्रक्रिया में सक्रिय होकर भाग ले सके। बालक अभ्यास क्रिया द्वारा विषय वस्तु पर पकड़ हासिल करता है, परन्तु इसके लिये यह भी महत्त्वपूर्ण है कि विद्यालय अथवा अधिगमकर्ता के आस-पास का वातावरण कैसा है क्योंकि शिक्षण अधिगम सम्बन्धी उपयुक्त परिस्थितियाँ एवं वातावरण बालक को ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है तथा बालक स्वयं को ऐसे वातावरण में सहज पाता है जिससे उसके अधिगम की गति बढ़ जाती है।

सामाजिक अधिगम सिद्धान्त का शैक्षिक महत्त्व

सामाजिक अधिगम सिद्धान्त के शैक्षिक महत्त्व को निम्न तथ्यों के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है

- यदि बच्चों के समक्ष अच्छे गुणों वाले व्यवहार को प्रदर्शित किया जाता है, तो उक्त बालक में वांछित गुणों का विकास किया जा सकता है।
- सामाजिक अधिगम का आधार अनुकरण है।
- बच्चों के व्यक्तित्व विकास में सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त सामाजिक अधिगमवाद है।
- बालकों के समक्ष बुरे व्यवहार, अनैतिक मॉडल से बचाना चाहिए।
- बच्चों के समक्ष आदर्श मॉडल प्रस्तुत करना चाहिए।

सामाजिक सक्षमता (Social Competence)

सामाजिक सक्षमता का तात्पर्य सामाजिक आशाओं के अनुरुप व्यवहार करने की क्षमता का विकास करने से है। सोरेन्सन के अनुसार, "सामाजिक परिपक्वता व्यक्ति को मित्र बनाने एवं विभिन्नता बनाए रखने की योग्यता द्वारा प्रकट होती है।" हरलॉक के अनुसार, "सामाजिक सम्बन्धों में परिपक्वता की प्राप्ति सामाजिक विकास है।"

www.studyofeducation.com

जन्म से कोई व्यक्ति सामाजिक नहीं होता। बालक ज्यों-ज्यों बड़ा होता है वह सामाजिक परम्परा को समझकर उसके अनुकूल अपने को बनाने लगता है। मारगरेट मीड के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि सामाजिक व्यवहार सीखा हुआ व्यवहार होता है। मिलर और डोलार्ड ने अपने अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला है कि दो-तीन सीखते है। लिप्पिट ने कहा है कि एक समूह का सदस्य अन्य सदस्यों साल की उम्र में बच्चे अचेतन अनुकरण द्वारा सामाजिक व्यवहार का अचेतन अनुकरण करता है। इस प्रकार बालक समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा किसी समूह का सदस्य बन जाता है। वह अपने सामाजिक क्षेत्र को व्यापक बनाकर अन्य सांस्कृतिक समूहों के साथ भी मिल-जुलकर रह लेता है। सामाजिक सक्षमता के ये दो आयाम है-समाजीकरण और सामाजिक क्षेत्र का विस्तार।

सामाजिक सक्षमता को समझने का एक तीसरा आयाम है **'सामाजिक भूमिका'**। भूमिका सांस्कृतिक इकाई है और व्यवहार की अपेक्षा से सम्बद्ध है। अपनी सामाजिक स्थिति के अनुरुप प्रत्येक व्यक्ति से एक निश्चित व्यवहार की अपेक्षा की जाती है। ज्यों-ज्यों बालक बड़ा होता जाता है वह अनेक प्रकार की भूमिकाओं को निभाना सीख लेता है। सामाजिक समंजन की प्रक्रिया जटिल होती है। बालक में यह क्षमता कम होती है। किशोर भी धीरे-धीरे सामाजिक सामंजस्य की क्षमता प्राप्त करता है, किन्तु किशोर में सामाजिक सामंजस्य की चेतना स्पष्ट रुप से परिलक्षित होती है। मानव सामाजिक व्यवहार एक सापेक्ष प्रत्यय है और इसका निर्धारण अनेक दृष्टिकोणों से करना पड़ता है।

कुछ सामाजिक मापदण्ड नैतिक होते हैं तो कुछ मनोवैज्ञानिक या न्यायिक या सांख्यिकीय होते हैं। विभिन्न समुदायों के मानकों के सूक्ष्म निरीक्षण के पश्चात् ही सामाजिक व्यवहार का कोई मानदण्ड निश्चित किया जा सकता है, किन्तु यह मानदण्ड निरपेक्ष नहीं होगा। सामाजिक सक्षमता की प्रक्रिया में दो वर्ष तक का बालक प्रायः आत्मकेन्द्रित होता है और दो वर्ष के बाद वह अपने ही लिंग के साथियों के साथ खेलने में रुचि लेने लगता है। किशोरावस्था में बालक बालिकाओं के साथ और बालिकाएँ बालकों के साथ मैत्री करने की इच्छुक होती हैं और भिन्न लिंगी व्यक्ति में रुचि लेने लगते हैं। किशोरावस्था में सामाजिक चेतना का उदय स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

www.studyeducation.com

सामाजिक सक्षमता का शैक्षिक निहितार्थ

सामाजिक सक्षमता का शिक्षा की दृष्टि से निहितार्थ अन्य बातों के अतिरिक्त समाजीकरण की प्रक्रिया को द्रुतगति प्रदान करना है। बालक के सामाजिक विकास में विद्यालय का बहुत महत्त्व है। जैसे ही शिशु विद्यालय पहुंचता है, शिक्षिका माँ का स्थान ग्रहण कर लेती है। बच्चा स्कूल में पर्याप्त समय बिताता है। अतः उसके विकास में स्कूल का स्थान घर के बाद सर्वोच्च है। छात्र के व्यक्तित्व पर शिक्षक का प्रभाव पड़ता है।

छात्र के सोचने के ढंग, व्यवहार को सुधारने के ढंग, गलती को स्वीकार करने का ढंग, लोगों से मिलने-जुलने व बातचीत के ढंग पर विद्यालय की छाप रहती है। इस प्रकार विद्यालय समाज की सामान्य संस्कृति को वालक में हस्तान्तारित कर देता है। शिशु विद्यालयों में तो मानसिक विकास की अपेक्षा सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास को ही मुख्य उद्देश्य माना जाता है।

प्रारम्भिक विद्यालयों में बालक मित्रों के साथ बैठकर, खेलकर पढ़-लिखकर अनेक बातें सीखते हैं। अत: शिक्षक को कक्षा के अन्दर के बाल-समूहों को उचित निर्देश देते रहना चाहिए। शिक्षक द्वारा यह प्रयास होना चाहिए कि बालक में सामाजिक कुशलता का विकास हो, वह उचित सामाजिक समायोजन कर सके, वह समाजीकरण में उन्नति करे, अपनी सामाजिक स्थिति को पहचाने और तद्नुसार सामाजिक भूमिका निभाए तथा सामाजिक आचरण के उच्च मापदण्ड को अपनाए।

सामाजिक संज्ञान (Social Cognition)

www.studyeducation.com

सामाजिक संज्ञान एक विस्तृत पद है, जिसका तात्पर्य उन तरीकों से होता है जिसके सहारे व्यक्ति अपनी सामाजिक दुनिया के बारे में प्राप्त सूचनाओं की व्याख्या तथा विश्लेषण कर उन्हें याद रखता है तथा उनका उपयोग अपनी आवश्यकता के अनुरुप करता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि सामाजिक संज्ञान एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से व्यक्ति अन्य लोगों के बारे में सोचता है तथा उनके साथ सम्बन्ध स्थापित करता है और उस सामाजिक वातावरण के बारे में भी सोचता है, जिसमें वर रहता है।

विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ

बेरोन, वर्न तथा ब्रेन स्कॉम्ब ने इस प्रकार परिभाषित किया है कि "सामाजिक संज्ञान से तात्पर्य उन तरीकों से होता है, जिसके सहारे हम लोग सामाजिक दुनिया के बारे में प्राप्त सूचनाओं की व्याख्या, विश्लेषण, उसे याद रखना तथा उनका उपयोग करते हैं।"

टेलर, पेपलाऊ तथा सीयर्स के अनुसार, "वातावरण में सामाजिक सूचनाओं से व्यक्ति, किस तरह से अनुमान लगाता है, का अध्ययन सामाजिक संज्ञान कहलाता है।"

रेबर एवं रेबर ने सामाजिक संज्ञान को परिभाषित करते हुए कहा है, "सामाजिक संज्ञान इस बात पर ध्यान केन्द्रित करता है कि व्यक्ति किस तरह से दूसरों तथा अपने द्वारा की गई क्रियाओं का प्रत्यक्षण, प्रत्याह्वान, चिन्तन तथा उसकी व्याख्या करता है।"

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हमें सामाजिक संज्ञान के स्वरुप में निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं

- सामाजिक संज्ञान में व्यक्ति उपयोग की गई सूचनाओं के आधार पर सामाजिक वातावरण के बारे में एक विशेष निर्णय पर पहुँचता है।
- सामाजिक संज्ञान में व्यक्ति दूसरे व्यक्ति, सामाजिक समूह, सामाजिक भूमिकाओं तथा सामाजिक परिस्थिति में अपने में उत्पन्न अनुभूतियों के बारे में एक सामाजिक निर्णय है।
- सामाजिक संज्ञान में व्यक्ति अपनी सामाजिक दुनिया या वातावरण से सूचनाओं को प्राप्त कर उसकी व्याख्या तथा विश्लेषण करता है।
- सामाजिक संज्ञान में व्यक्ति इन सूचनाओं की सिर्फ व्याख्या एवं विश्लेषण ही नहीं करता है, बल्कि उसका उपयोग करके सामाजिक वातावरण को समझने की कोशिश करता है।

सामाजिक संज्ञान का तत्त्व : स्कीमा

www.studyofeducation.com

सामाजिक संज्ञान का महत्त्वपूर्ण तत्त्व स्कीमा होता है, जिसमें व्यक्ति सामाजिक समूह, सामाजिक परिस्थितियों, अन्य लोगों के विषय में जो सूचनाएँ, पूर्वकल्पनाएँ तथा ज्ञान आदि उपलब्ध होता है, उसको ठीक तरीके से संगठित कर लेता है। अत: स्कीमा को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है "स्कीमा एक ऐसी मानसिक संरचना (या फ्रेमवर्क) होती है, जिसमें सामाजिक सूचनाओं को संगठित किया जाता है। ताकि ऐसी 14 सूचनाओं को संसाधित किए जाने की प्रक्रिया ठीक सम्पन्न हो सके।

इस तरह से स्कीमा व्यक्ति को बहुत सारी सूचनाओं को संसाधित करने में मदद करता है, ताकि उसे सरलीकृत एवं संगठित किया जा सके। बहुत ही सामान्य घटनाओं के बारे में, जो स्कीमा होते हैं, उसे स्क्रिप्ट कहा जाता है। सामाजिक संज्ञान की प्रक्रिया पर स्कीमा का बहुत ही सार्थक प्रभाव पड़ता है। एक बार जब स्कीमा का निर्माण हो जाता है, तो वह बहुत से सामाजिक कारकों को प्रभावित करता है। सामाजिक मनोवैज्ञानिका अनेकों शोध किए तथा अपने शोधों से यह निष्कर्ष निकाला कि स्कीमा सामाजिक संज्ञान के तीन पहलू होते हैं, जो व्यक्ति पर सीधा प्रभाव डालते हैं।" ये तीन पहलू निम्न हैं -

अवधान या ध्यान

अवधान इस बात से होता है कि व्यक्ति किस तरह की सूचनाओं को देखता है और उस पर ध्यान देता है। यहाँ स्कीमा फिल्टर के समान कार्य करता है जो सूचना स्कीमा के साथ संगत होती है, उस पर व्यक्ति धिक ध्यान देता है और ऐसी सूचनाओं को चेतन में प्रवेश करने की सम्भावना काफी अधिक होती है। उसी तरह से जो सूचना स्कीमा के साथ मेल नहीं खाती है, उस पर व्यक्ति ध्यान नहीं देता है। इस तथ्य की सम्पुष्टि फिस्के के अध्ययन से हो चुकी है, परन्तु कुछ लोगों के अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ है कि यदि कोई सूचना स्कीमा से बिल्कुल ही भिन्न है, तो उसे अपवाद समझकर व्यक्ति उस पर भी ध्यान देता है।

कूटसंकेतीकरण

कूटसंकेतीकरण से तात्पर्य इस बात से होता है कि कौन-सी सूचनाएँ स्मृति में प्रवेश करती हैं? यहाँ भी समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गए शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि जो सूचनाएँ स्कीमा के साथ संगत होती हैं वह स्मृति में प्रवेश करती हैं तथा असंगत सूचनाएँ स्मृति में प्रवेश नहीं कर पाती हैं अर्थात् उनका कूटसंकेतीकरण नहीं हो पाता है, परन्तु अध्ययनों से यह भी पता चला है कि जो सूचनाएँ स्कीमा से काफी अधिक असंगत होती हैं, उनका भी कूटसंकेतन एक अलग स्मृति के रूप में व्यक्ति कर लेता है।

स्टैनगोर तथा मैकमिलन ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बताया है कि इस ढंग की अत्यन्त असंगत सूचनाएँ इतनी अप्रत्याशित होती हैं कि व्यक्ति उस पर ध्यान देने के लिए बाध्य हो जाता है तथा उसे अपनी स्मृति में भी रखता है।

पुनःप्राप्ति

www.studyofeducation.com

पुनःप्राप्ति में व्यक्ति स्मृति में संचित सूचनाओं को प्रत्याह्वान करता है, ताकि उसका उपयोग सही तरीके से हो सके। कई अध्ययनों में इस तथ्य पर विचार किया गया है कि स्कीमा से संगत सूचनाओं की पुनः प्राप्ति ज्यादा होती है। इस क्षेत्र में किए गए विभिन्न अध्ययनों का समग्र निष्कर्ष यह है कि व्यक्ति स्कीमा से संगत सूचनाओं को ज्यादा प्रत्याह्वान करता है तथा उसका उपयोग करता है, किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि असंगत सूचनाओं को व्यक्ति स्मृति में नहीं रखता है।

सच्चाई यह है कि व्यक्ति असंगत सूचनाओं को भी उतनी ही मजबूती से - स्मृति से संचित रखता है, जितना कि संगत सूचनाओं को, परन्तु व्यक्ति सिर्फ उन्हीं सूचनाओं को लोगों को बताता है।

सामाजिक संज्ञान पर स्कीमा का पड़ने वाला प्रभाव उपयुक्त कारकों के अलावा अन्य कारकों पर भी निर्भर करता हैं; जैसे-स्टैनगोर तथा मैकमिल तथा टाइस व उनके सहयोगी में अपने शोधों से स्पष्ट स्कीमा स्वयं काफी विकसित यथा मजबूत होता है, तब ऐसे स्कीमा का प्रभाव सामाजिक संज्ञान पर सबसे अधिक पड़ता है, कुण्डा ने अपने शोध में बताया कि जब संज्ञानात्मक भार, अर्थात् व्यक्ति किसी खास समय में कितना मानसिक प्रयास कर रहा है, अधिक होता है, तो उसका प्रभाव सामाजिक संज्ञान पर अधिक पड़ता है।

स्कीमा के दोष

प्रमुख रुप से स्कीमा के दो दोष हैं, जो निम्नलिखित हैं

स्कीमा व्यक्ति की सामाजिक दुनिया के बारे में सही बोध में विकृति उत्पन्न करता है। समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि स्कीमा पूर्वाग्रह तथा रुढिकृत के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जब व्यक्ति विशेष स्कीमा के कारण पूर्वागृहित हो जाता है, तो वह अपनी सामाजिक दुनिया के बारे में यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाता है। कुण्डा तथा ओलोसन ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बताया है कि स्कीमा का एक बार निर्माण हो जाने पर उसमें परिवर्तन आसानी से नहीं होता है। कभी-कभी स्कीमा आत्मपूरक प्रकृति की होती है।

• जब स्कीमा का स्वरुप आत्मपूरक प्रकृति का होता है, तो व्यक्ति स्कीमा की माँग के अनुरूप न चाहते हुए भी व्यवहार करता है और इस तरह उसके सामाजिक संज्ञान में विकृति उत्पन्न हो जाती है। रोजेनथल तथा जैकोबसन ने अपने अध्ययन के आधार पर इस तथ्य की सम्पुष्टि की है।

समाज एवं सामाजिक सम्बन्ध की अवधारणा

www.studyoeducation.com

समाज एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं प्राथमिक अवधारणा है। साधारण बोलचाल की भाषा में 'समाज' शब्द का प्रयोग व्यक्तियों के समूह के लिए किया जाता है। किसी भी संगठित अथवा असंगठित समूह को समाज कह दिया जाता है; जैसे-आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज एवं महिला समाज आदि। यह समाज शब्द का साधारण अर्थ है जिसका प्रयोग लोगों ने अपने अनुसार किया। इसी कारण 'समाज' शब्द में निश्चितता की कमी पाई जाती है। विभिन्न राजनीतिशास्त्रियों ने 'समाज' की व्याख्या अपने अनुसार की तथा सामाजिक मनोवैज्ञानिक के अपने अनुसार अर्थ प्रस्तुत किए हैं। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि विभिन्न समूहों ने 'समाज' शब्द का अर्थ अपने अनुसार लिया है।

समाज का अर्थ

समाजशास्त्र में 'समाज' शब्द का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में किया गया है। यहाँ व्यक्ति-व्यक्ति के बीच पाए जाने वाले सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर निर्मित व्यवस्था को समाज कहा गया है। यहाँ व्यक्तियों के समूहों को सामान्यतः समाज नहीं माना जाता। यद्यपि कुछ विद्वानों ने इस रुप में भी समाज को परिभाषित किया है

- **जॉर्ज सिमैल** ने समाज को उन व्यक्तियों का समूह माना है जो अन्त:क्रिया द्वारा सम्बन्धित होते हैं।
- **फेयर चाइल्ड** के अनुसार, समाज व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो अपने बहुत से हितों जिनमें अनिवार्य रूप से स्वयं की रक्षा या भरण-पोषण तथा स्वयं को स्थायित्व प्रदान करना सम्मिलित है, को पूरा करने में सहयोग करते हैं।

- **मोरिस गिन्सबर्ग** के अनुसार, एक समाज व्यक्तियों का वह समूह या संग्रह है, जो कुछ सम्बन्धों तथा व्यवहार के कुछ ढंगों द्वारा संगठित हैं जो उन्हें अन्यों से अलग करते हैं, जो इन सम्बन्धों में सम्मिलित नहीं है या जो व्यवहार में उससे अलग हैं।

उपरोक्त सभी परिभाषाओं में समाज को व्यक्तियों के समूह के रुप में चित्रित किया गया है, लेकिन यह समाज शब्द का संकुचित अर्थ है। अतः समाज की अवधारणा को समाजशास्त्रीय अर्थ में समझना अत्यन्त आवश्यक है।

मैकाइवर तथा पेज ने समाज को सामाजिक सम्बन्धों के जाल या ताने-बाने के रुप में परिभाषित किया है। इन्होंने सम्बन्धों की सदैव परिवर्तित होने वाली जटिल व्यवस्था को समाज माना है।

व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति लिए अन्य व्यक्तियों के साथ अन्त:क्रिया करता है और सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करता है। ये लोग विभिन्न सम्बन्धों के आधार पर एक-दूसरे के साथ व्यवहार करते हैं, कुछ क्रियाएँ एवं प्रतिक्रियाएँ करते हैं जो कुछ निश्चित नियमों के आधार पर होती हैं।

इनमें कुछ आदर्श एवं पारस्परिक अपेक्षाएँ सम्मिलित हैं। इन सबसे मिलकर बनने वाली व्यवस्था को ही समाज कहते हैं। समाज नामक अवधारणा में सामाजिक सम्बन्धों की प्रधानता के कारण सामाजिक सम्बन्धों को समझना अत्यन्त आवश्यक है।

www.studyofeducation.com

सामाजिक सम्बन्ध (Social Relations)

सामाजिक सम्बन्धों से तात्पर्य व्यक्तियों की उन सामाजिक क्रियाओं से है, जो अर्थपूर्ण ढंग से या किसी विशेष उद्देश्य को पूरा करने के लिए की जाती हैं। जैसे कोई व्यक्ति अपनी जैविक अथवा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए किसी दूसरे व्यक्ति के साथ कोई क्रिया कर रहा है, तब ऐसी क्रिया के फलस्वरुप स्थापित होने वाले सम्बन्ध को सामाजिक सम्बन्ध कहा जाता है। सामाजिक सम्बन्धों का निर्माण अन्त:क्रियाओं से होता है। सामाजिक अन्त:क्रिया तीन स्तरों पर होती है

व्यक्ति →व्यक्ति के बीच

व्यक्ति → समूह के बीच
समूह → समूह के बीच

इन तीनों स्तरों पर जिन अन्तःक्रियाओं का आदान-प्रदान होता है, उनके परिणामस्वरुप ही सामाजिक सम्बन्धों का निर्माण होता है तथा इन्हीं सम्बन्धों के परिणामस्वरुप समाज का निर्माण होता है। जागरुकता एवं अन्तः क्रिया के बिना सामाजिक सम्बन्ध नहीं हो सकता तथा सामाजिक सम्बन्ध के बिना कोई समाज नहीं हो सकता। जहाँ सामाजिक प्राणी पारस्परिक जागरुक होते हैं, अन्तः क्रिया करते हैं तथा एक-दूसरे की भावनाओं एवं अपेक्षाओं का ख्याल रखते हैं वही समाज है।

सामाजिक सम्बन्धों के प्रकार

सामाजिक सम्बन्ध कई प्रकार के होते हैं; जैसे-पति-पत्नी का, माता-पिता तथा बच्चों का, भाई-बहन का, मित्र-मित्र का, अध्यापक-शिष्य का, नौकर-मालिक का, ग्राहक-दुकानदार का, मतदाता-प्रत्याशी आदि का। इनमें भी कुछ सामाजिक सम्बन्ध आर्थिक प्रकार के, कुछ धार्मिक, कुछ वैयक्तिक तथा कुछ राजनीतिक प्रकार के होते हैं। साथ ही कुछ सम्बन्ध प्रत्यक्ष तो कुछ अप्रत्यक्ष, कुछ मित्रतापूर्ण तो कुछ शत्रुतापूर्ण होते हैं। ये सभी सम्बन्ध पारस्परिक अन्तःक्रियाओं तथा जागरुकता के कारण ही सामाजिक सम्बन्धों की श्रेणी में आते हैं। यद्यपि कुछ सामाजिक सम्बन्धों में शुत्रता अथवा संघर्षपूर्णता भी होती है, परन्तु अधिकांश सामाजिक सम्बन्धों में परस्पर साहचर्य, सामुदायिकता, साथ-साथ भागीदारी तथा सामान्य जीवन के आधारभूत तत्त्व पाए जाते हैं। सहयोगी सम्बन्धों के आधार पर ही सामाजिक व्यवस्थाएँ पनपती हैं एवं समाज बनते हैं।

समाजीकरण (Socialisation)

जन्म के समय बालक में सभी प्रकार के सामाजिक गुणों का अभाव होता है। वह माता-पिता एवं समाज के सम्पर्क में आकर मुस्कराना व पहचानना सीखता है। आगे चलकर वह सामाजिक शिष्टाचार के अनेक गुणों को सीखता है।

समाजशास्त्र में बच्चे के सामाजिक बनने की इस प्रक्रिया को ही समाजीकरण कहा जाता है। समाजीकरण सीखने की एक प्रक्रिया है, जिससे बालक समाज में रहना सीखता है। समाजीकरण की प्रक्रिया को जॉनसन ने काफी सरल ढंग से परिभाषित किया है। उन्होंने बताया है कि समाजीकरण वह प्रशिक्षण है, सीखने वालों को सामाजिक भूमिका अदा करने में समर्थ बनाता है।

समाजीकरण विकास की प्रक्रिया है, जिसमें सामाजिक गुणों की प्राथमिकता होती है। समाजीकरण के प्रमुख तत्त्व हैं

- सकारात्मक चिन्तन करना।
- सामाजिक सम्बन्धों का बोध तथा आचरण करना।
- सामाजिक भूमिकाओं का समुचित निर्वाह करना
- सामाजिक मानकों, मूल्यों और संस्कृति के अनुसार आचरण करना।

www.studyofeducation.com

किम्बॉल यंग ने मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में लिखा है, "समाजीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रवेश करता है, समाज के विभिन्न समूहों का सदस्य बनता है और जिसके द्वारा उसे समाज के मूल्यों और मानकों (Standards) को स्वीकार करने की प्रेरणा मिलती है।"

विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रतिपादित समाजीकरण की परिभाषाएँ निम्नवर्णित है

- **ग्रीन** के अनुसार, "समाजीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा बच्चा अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं, आत्मपन और व्यक्तित्व प्राप्त करता है।"

- **बोगाड्‌र्स** के अनुसार, "समाजीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति एक-दूसरे पर निर्भर रहकर व्यवहार करना सीखता है और इसके द्वारा सामाजिक आत्म-नियन्त्रण, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा सन्तुलित व्यक्तिल का अनुभव प्राप्त करता है।"
- **ऑगबर्न तथा निमकॉफ** के अनुसार, "समाजीकरण से समाजशास्त्रियों के तात्पर्य वह प्रक्रिया है, जिससे व्यक्ति का मानवीकरण होता है तथा उत्तम गुणों का विकास होता है।"

समाजीकरण के सोपान

समाजीकरण के प्रमुख सोपान तीन हैं

- समाजीकरण का पहला सोपान **प्रसरण** होता है। इसके अन्तर्गत मनुष्य का उन गुणों एवं प्रारुपों से सामना होता है, जो उसे ग्राह्य करने पड़ते हैं। । प्रक्रिया प्रसरण के नाम से जानी जाती है। . यह

- **संस्कृतीकरण** समाजीकरण का दूसरा सोपान है, इसके अन्तर्गत मनुष्य जिस समाज में रहने लगता है, उस समाज के रीति-रिवाज, आचार-विचार , रहन-सहन को स्वीकार करने के साथ-साथ वह अपने आचार-विचार एवं खान-पान को दूसरे समाज में प्रचारित करता है। समाजीकरण की यह प्रक्रिया दोहरी होती है।
-
- समाजीकरण का तीसरा सोपान **परिपाक** है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति किसी विशेष समाज के रीति-रिवाजों को पूर्ण रुप से अपने आप में आत्मसात कर लेता है। जिस समय यह क्रिया पूरी हो जाती है, व्यक्ति पूरी तरह समाजीकृत हो जाता है। .

समाजीकरण की अवस्था

www.studyofeducation.com

अलेक्ज़ेण्डर के अनुसार, “व्यक्तित्व का अस्तित्व शून्य में नहीं होता। सामाजिक घटनाएँ और प्रतिक्रियाएँ मानसिक प्रक्रियाओं तथा व्यक्तित्व के प्रतिमानों को सतत रुप से प्रभावित करती रहती हैं।"

समाज में जन्म लेने, विकसित होने और समाज में जीवन व्यतीत करने के लिए सामाजिक आदर्शों तथा प्रतिमानों का अनुसरण करना ही सामाजिक विकास है। सामाजिकता के कारण ही बालक में समायोजन की क्षमता विकसित होती है।

शैशवावस्था में सामाजिक विकास

आरम्भ में बालक का समाज उसकी माँ होती है। शिशु चार-पाँच सप्ताह में अपनी माँ के चेहरे को पहचानने लगता है। 6-7 माह में अपने परिजनों को पहचानने लगता है। 9 माह की आयु में शिशु घुटनों के बल चलकर अपनी माँ या किसी परिचित के पास चला जाता है। 2 वर्ष की अवस्था में अपने आयु के बालकों के साथ खेलना शुरु कर देता है। 6 वर्ष की आयु में बालक सामूहिक खेलों में भाग लेने लगता है। क्रोध करना, रुठना आदि की प्रवृत्ति नकारात्मक प्रवृत्ति के कारण उत्पन्न होती है।

www.studyofeducation.com

बाल्यकाल में सामाजिक विकास

इस अवस्था में ही बालक विद्यालय जाता है। विद्यालय में अपने जैसे अनेक बालकों को देखता है। विद्यालय से ही उसमें समूह बनाने, समूह में रहने की प्रवृत्ति विकसित होती है। लड़के और लड़कियाँ अलग-अलग खेलना पसन्द करने लगते हैं। बालकों में आपस में प्रतिस्पर्धा उत्पन्न होने लगती है। इस अवस्था में देखा गया है कि लड़कों में ऑडिपस और लड़कियों में इलेक्ट्रा ग्रन्थियाँ विकसित होने लगती हैं।

ऑडिपस ग्रन्थि ऑडिपस ग्रन्थि से तात्पर्य है कि लड़के अपनी माता से अधिक प्रेम करते हैं। इस भावना के कारण ही यह ग्रन्थि ऑडिपस ग्रन्थि के नाम से जानी जाती है।

इलेक्ट्रा ग्रन्थि इस ग्रन्थि के कारण ही लड़कियों में पिता के प्रति आसक्ति की भावना पाई जाती है। इस भावना के कारण ही यह ग्रन्थि इलेक्ट्रा ग्रन्थि कहलाती है।

किशोरावस्था में सामाजिक विकास

इस अवस्था में सामाजिक विकास निम्नलिखित प्रकार से होता है

- किशोरावस्था के समान उद्देश्य होने के कारण स्थायी मित्रता का विकास हो जाता है। मित्रता में रुचि, अभिवृत्ति, सामाजिक तथा आर्थिक स्तर का भी ध्यान किशोर रखते हैं। घर की निकटता का कोई विशेष महत्त्व नहीं रहता है।
- किशोरों को यह ज्ञान हो जाता है कि उनकी सामाजिक मान्यता किस स्थान पर है और किस पर नहीं? किशोरों को यह अनुभव होने लगता है कि माता-पिता उन्हें समझने का प्रयत्न नहीं करते और उन्हें उचित स्वतन्त्रता नहीं देते।
- किशोरावस्था में यौन विकास के कारण लड़के-लड़कियाँ आपस में मिलना, बात करना, सामाजिक कार्यों में भाग लेना चाहते हैं। जहाँ पर लड़के-लड़कियों के सामाजिक सम्बन्ध स्थापित नहीं होते, वहाँ पर सम-यौन (Same-sex) सम्बन्ध विकसित होते हैं। किशोरों में सामाजिकता का विकास इस सीमा तक होता है कि वह अपने दल या साथियों की प्रतिष्ठा के लिए त्याग करने को तत्पर हो जाते हैं। दल में प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए वह दल की प्रत्येक बात का समर्थन करते हैं।
- लड़कियों का सामाजिक विकास अधिक परिपक्वता लिए होता है और वे लड़कों तथा तत्सम्बन्धी चर्चा एवं साहित्य में अधिक रुचि लेती हैं। .
- किशोरों में सामाजिक चेतना का विकास तीव्र गति से होता है। माता-पिता तथा व्यक्तियों से वह अपनी प्रशंसा सुनना चाहता है। रुठना और अपनी बात मनवाना उसका ध्येय रहता है। व्यवहार में स्वार्थपरता अधिक पाई जाती है।

समाजीकरण की प्रक्रियाएँ

जे एच फिक्टर के अनुसार, सीखने की प्रक्रियाओं में तीन प्रकार की क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है -

- **अनुकरण द्वारा सीखना** बालकों में अनुकरण की क्षमता अच्छी होती है, जो चीजें उन्हें अच्छी लगती हैं या उनसे उनका मनोरंजन होता है। उन चीजों का बालकों द्वारा अनुकरण किया जाता है। अनुकरण का उद्देश्य प्रत्यक्षतः सीखना नहीं होता, लेकिन अनुकरण के सहारे बालक बहुत कुछ स्वाभाविक रुप से सीख जाते हैं।
- **प्रतियोगिता द्वारा सीखना** मनुष्य का स्वभाव ही प्रतियोगी है। प्रतियोगिता की भावना स्पष्ट रुप से विद्यालयों और खेल के मैदान में दिखाई पड़ती है। प्रतियोगिता की भावना के कारण कुछ-न-कुछ सीखना ही पड़ता है।
- **निर्देशन द्वारा सीखना** माता-पिता और सगे-सम्बन्धी बालक को हमेशा अच्छा व्यवहार करने की सलाह देते हैं। बच्चों के समक्ष जब कोई नवीन समस्या आती है तो इस परिस्थिति में वह अपने मित्रों से सलाह लेते हैं। इस प्रकार सलाह से भी बालकों को सीखने में सहायता मिलती है।
- **डेविस** के अनुसार, "परिवर्तन की इस प्रक्रिया के बिना, जिसे हम समाजीकरण कहते हैं, समाज एक पीढ़ी से भी आगे स्वयं को सन्तुलित नहीं कर सकता और न ही संस्कृति जीवित रह सकती है। इसके बिना व्यक्ति सामाजिक प्राणी भी नहीं बन सकता।"

www.studyofeducation.com

- **कोनिंग** के अनुसार, "समाजीकरण से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है, जिसमें एक व्यक्ति अपने समाज, जिसमें वह जन्मा है, का कार्यरत (या उपयोगी) सदस्य बनता है, अर्थात् समाज की जनरीतियों एवं रुढ़ियों के अनुसार व्यवहार एक कार्य करता है।"

समाजीकरण के सिद्धान्त

समाजीकरण के अनेक सिद्धान्त दिए गए हैं। इसमें से महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त निम्नलिखित हैं

कूले का सिद्धान्त

कूले के अनुसार व्यक्ति का समाजीकरण दूसरे व्यक्तियों के साथ मिलकर रहने से होता है। कूले के सिद्धान्त को दर्पण सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति 'स्व' का विकास दूसरे व्यक्तियों के साथ अन्तःक्रियाओं और अपने मूल्यांकन द्वारा करता है।

कूले के अनुसार, व्यक्ति समाजरुपी दर्पण में यह देखने का प्रयास करता है कि अन्य लोग उसके बारे में क्या सोचते हैं। लोगों की धारणा के अनुसार ही व्यक्ति अपने 'स्व' का विकास करता है। कूले के सिद्धान्त के अनुसार, 'स्व' का विकास सामाजिक अनुभव का विषय है और निश्चित ही सामाजिक अन्तःक्रियाओं के कारण उत्पन्न होता है।

www.studyofeducation.com

फ्रॉयड का सिद्धान्त 'मनोविश्लेषण'

फ्रॉयड ने कूले के सिद्धान्त का विरोध किया। फ्रॉयड के अनुसार, 'स्व' तथा 'समाज' समरुप नहीं हैं। इसने अपने अलग सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। फ्रॉयड के अनुसार व्यक्ति में चेतना की तीन दशाएँ पाई जाती हैं-चेतना अवस्था, पूर्व-चेतना अवस्था तथा अचेतन अवस्था।

फ्रॉयड के अनुसार, मनुष्य की मानसिक प्रक्रिया इन्हीं अवस्थाओं के बीच चलती रहती है। इसके अनुसार, व्यक्ति की कोई भी इच्छा दमित नहीं होती है बल्कि अचेतन अवस्था में चली जाती है।

फ्रॉयड का कहना है कि मनुष्य का मस्तिष्क अनेक दमित इच्छाओं से परिपूर्ण है। फ्रॉयड का कहना है कि व्यक्तित्व का निर्माण इड (Id), इगो (Ego) और सुपर इगो (Super Ego) से होता है। फ्रॉयड ने 'इड' की तुलना घोड़े से की है, जबकि 'इगो' की तुलना घुड़सवार से। इसके अनुसार, इगो का कार्य घुड़सवार जैसा है, जो इड रुपी घोड़े का मार्गदर्शन करता है, लेकिन कई बार इगो, इड

का मार्गदर्शन अपनी इच्छा अनुसार नहीं कर पाता है। 'इड' और 'इगो' के संघर्ष से ही व्यक्ति में मनोविक्षिप्तता की स्थिति उत्पन्न होती है।

समाजीकरण की विशेषताएँ

समाजीकरण की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

- समाजीकरण सीखने की एक प्रक्रिया है। व्यक्ति समाज का सदस्य होने के नाते जो सीखता है, वही समाजीकरण है।
- समाजीकरण किसी विशेष आयु तक सीमित न होकर आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। यहाँ तक कि वृद्धों का भी समाजीकरण होता है।
- समाजीकरण अपनी संस्कृति को ग्रहण या आत्मसात करने की एक प्रक्रिया है। चूंकि संस्कृति का स्वरुप अमूर्त होता है, अत: इसे सीखकर ही हासिल किया जा सकता है।
- समाजीकरण एक गत्यात्मक प्रक्रिया भी है, क्योंकि समय के साथ-साथ सीख भी बदलती रहती है।
- समाजीकरण शिक्षा है, लेकिन समस्त प्रकार की शिक्षा समाजीकरण नहीं है। समाजीकरण व्यापक शिक्षा का एक छोटा-सा अंश है।
- समाजीकरण व्यक्ति को सामाजिक भूमिका निर्वाह योग्य बनाने की प्रक्रिया है।

www.studyofeducation.com

समाजीकरण के कारक एवं संस्थाएँ

समाजीकरण के प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं

- परिवार
- विद्यालय की भूमिका
- समुदाय की भूमिका
- प्रशासनिक व्यवस्था
- जाति प्रथा
- जनसंचार के साधन का उपयोग
- आर्थिक स्तर

समाजीकरण की प्रमुख संस्थाएं निम्नलिखित हैं

- परिवार

- विद्यालय तथा
- समुदाय

सामाजिक तथा वैयक्तिक मूल्यों का विकास

समाजीकरण की प्रक्रिया के कारण सामाजिक मूल्यों एवं वैयक्तिक मूल्यों का विकास होता है

- सामाजिक आचरण
- सामाजिक परिपक्वता
- चरित्र का विकास
- आत्मविश्वास की भावना
- सामाजिक भूमिका
- प्रतिस्पर्धा तथा सहयोग
- राष्ट्रीयता
- वर्ग प्रतिष्ठा
- भिन्नता
- सामुदायिक भावना

www.studyofeducation.com

समाजीकरण के लक्ष्य

समाजीकरण के द्वारा ही बालक अपने समुदाय एवं समाज में समायोजन करना सीखता है। उसे यह ज्ञान होता है कि समायोजन के लिए उसे किन बातों का ध्यान रखना है। अपनी क्षमताओं का विकास करने तथा स्थायी एवं अर्थपूर्ण सन्तुष्टियों को प्राप्त करने के लिए उसे क्या करना चाहिए। ब्रूम तथा सेजनिक ने समाजीकरण के चार लक्ष्यों (उद्देश्यों) का उल्लेख किया है, जो निम्नलिखित हैं

- **क्षमताओं का विकास** समाजीकरण का लक्ष्य व्यक्ति में ऐसी क्षमताएँ विकसित करना है जिससे कि वह स्वयं को समाज अनुकूल बना ले। सामान्यत: समाज के परम्परागत व्यवहार पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होते हैं जिन्हें अनुकरण के द्वारा सीखा एवं दैनिक जीवन में प्रयोग में लाया जाता है, किन्तु उच्च तकनीकी ज्ञान से परिपूर्ण समाजों में औपचारिक शिक्षा द्वारा सामाजिक क्षमताओं का विकास करना समाजीकरण का प्रमुख कार्य है जिससे व्यक्ति उचित प्रकार से समाज में समायोजन कर सके।

- **आधारभूत नियमबद्धता का विकास** नियमबद्धता एक सामाजिक सम्बन्धों का मानव की प्राकृतिक प्रेरणाएँ उसे नियमहीन व्यवहार करने के लिए प्रोत्साहित करती है। समाजीकरण के द्वारा व्यक्ति में अनुशासन एवं नियमबद्धता के गुण उत्पन्न किए जाते हैं। समाजीकरण की प्रक्रिया व्यक्ति को इच्छित लक्ष्य की प्राप्ति करने पर बल ही नहीं देती, अपितु परिस्थितियों के अनुसार लक्ष्य को स्थगित करने, आगे बढ़ाने, छोड़ने अथवा संशोधित करने में भी सहायता देती है। इसका उद्देश्य भावी लक्ष्यों, आदेशों एवं सामाजिक मूल्यों को ध्यान में रखते हुए व्यवहार करना सीखना है।

- **आकांक्षाओं की पूर्ति** समाजीकरण नियमबद्धता के साथ ही आकांक्षाओं की पूर्ति करने भी सहायक है। अनुशासन आकांक्षाओं की पूर्ति करने में सहायक होता है। समाज सामान्य सांस्कृतिक मूल्यों का संचारण ही नहीं करता वरन् विशिष्ट आकांक्षाएँ भी उत्पन्न करता है; जैसे-उच्च एवं विकसित अर्थव्यवस्था व्यक्ति को व्यापारी बनने की इच्छा उत्पन्न करती है।

- **सामाजिक भूमिकाओं को निभाने की समझ** समाजीकरण द्वारा व्यक्ति को अपनी सामाजिक भूमिका निभाने तथा उससे सम्बन्धित अभिवृत्तियों को सिखाने का भी कार्य किया जाता है। समूह सदस्यता की मांग है कि व्यक्ति सामान्य योग्यता के साथ-साथ विशिष्ट भूमिकाओं को निभाने की योग्यता भी प्राप्त करें। व्यक्ति समाज में कई पद ग्रहण करता है तथा कई लोगों के सम्पर्क में आता है। प्रत्येक पद एवं व्यक्ति के सन्दर्भ में उसे एक विशेष प्रकार की भूमिका निभानी पड़ती है, जो क्षमता समाजीकरण के द्वारा विकसित होती है। .

www.studyofeducation.com

PART D - मार्गदर्शन एवं परामर्शन

मार्गदर्शन (Guidance)

मानव जीवन संघर्ष की लम्बी श्रृंखला है। एक ओर व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु संघर्ष करना पड़ता है, तो वहीं दूसरी ओर वह अपने वातावरण सम्बन्धी स्थितियों के साथ संघर्षरत रहता है। यह संघर्ष जीवन के प्रारम्भिक वर्षों से लेकर मृत्युपर्यन्त चलता रहता है तथा व्यक्ति अपनी कठिनाइयों को दूर करने तथा वातावरण में उचित समायोजन के लिए प्रयासरत् रहता है।

इसके लिए वह अपनी योग्यताओं तथा क्षमताओं का विकास करता है तथा योजनाएँ बनाता है। परन्तु कुछ विशेष परिस्थितियाँ ऐसी भी होती हैं, जब उसे अपने लक्ष्यों की पूर्ति में कठिनाई अनुभव होती है। तब उसे ऐसे व्यक्ति एवं सलाहकार की आवश्यकता महसूस होती है, जो उसे उचित मार्ग दिखा सके तथा उसकी लक्ष्यपूर्ति में सहायता कर सके। इस प्रकार सामान्यतः मार्गदर्शन से तात्पर्य एक ऐसी प्रक्रिया से है, जिसके द्वारा कोई व्यक्ति विभिन्न प्रकार के सामाजिक, व्यक्तिगत एवं शैक्षिक समायोजन में किसी से सहायता एवं निर्देशन प्राप्त कर वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति करता है।

जबकि शिक्षा मनोवैज्ञानिकों ने मार्गदर्शन के अर्थ में अधिक विशिष्टता लाते हुए कहा है कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें किसी व्यक्ति को अनुभवी एवं विशेषज्ञ द्वारा इस प्रकार की सहायता दी जाती है कि वह अपनी जन्मजात एवं अर्जित क्षमताओं एवं योग्यताओं का उचित विकास कर सके तथा जीवन की समस्याओं का सफलतापूर्वक समाधान करते हुए वांछित उद्देश्यों को प्राप्त कर सके।

निम्नलिखित परिभाषाओं द्वारा मार्गदर्शन के अर्थ को भली-भांति समझा जा सकता है|

बी. एफ. स्कीनर के अनुसार, "नवयुवकों को स्वयं अपने प्रति, दूसरे के प्रति तथा परिस्थितियों के प्रति समायोजन करने में सहायता प्रदान करने की प्रक्रिया मार्गदर्शन है।" .

सेकण्डरी शिक्षा आयोग के अनुसार, "मार्गदर्शन एक गहन कार्य है, जिसका सम्बन्ध लड़के लड़कियों को अपनी योजनाओं क्षमताओं तथा अपने कामकाज की दुनिया के सन्दर्भ में अपने भविष्य की योजना बुद्धिमानी के साथ बनाने के लिए दी जाने वाली सहायता से है।" .

क्रो एण्ड क्रो अनुसार, "मार्गदर्शन पर्याप्त रुप से प्रशिक्षित एवं विशेषज्ञता प्राप्त पुरुषों तथा महिलाओं द्वारा किसी भी आयु के व्यक्ति को सहायता प्रदान करना है ताकि वह अपने जीवन की क्रियाओं को व्यवस्थित कर सके। अपने निजी दृष्टिकोण विकसित कर सके, अपने आप निर्णय ले सके और अपने जीवन का बोझ उठा सके।"

जोन्स के अनुसार, "मार्गदर्शन एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को विकल्प चुनने, समायोजन करने तथा अपनी समस्याओं का समाधान करने में दी गई सहायता है।"

www.studyoreducation.com

मार्गदर्शन की प्रकृति

मार्गदर्शन की प्रकृति को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है -

- मार्गदर्शन की प्रकृति व्यक्तिगत सहायक है। भले ही यह व्यक्तिगत रूप से दी जाए अथवा सामूहिक रूप से। इसका उद्देश्य व्यक्तिगत सहायता प्रदान करना ही होता है।
- मार्गदर्शन किसी भी आयु के ऐसे व्यक्ति को दिया जा सकता है, जिसे इसकी आवश्यकता हो। इस प्रकार मार्गदर्शन का क्षेत्र विस्तृत है, क्योंकि इसमें विभिन्न आयु, विभिन्न रुचियों तथा विभिन्न स्वभाव के व्यक्ति सम्मिलित होते हैं।
- मार्गदर्शन प्रदान करना प्रत्येक व्यक्ति का कार्य नहीं है। यह अत्यन्त कुशल, परिपक्व एवं योग्य व्यक्तियों का कार्य है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में मार्गदर्शन एक तकनीकी कार्य है, जिसके लिए प्रशिक्षित मार्गदर्शकों, करियर विशेषज्ञों, मनोवैज्ञानिकों तथा परामर्शदाताओं की आवश्यकता होती है।
- मार्गदर्शन व्यक्ति को स्वयं के प्रति, दूसरों के प्रति तथा अपने विशिष्ट वातावरण के प्रति समायोजित होने में सहायता प्रदान करता है।
- मार्गदर्शन की प्रकृति व्यक्ति के भावी जीवन से सम्बन्धित है। मार्गदर्शन के द्वारा व्यक्ति को भावी जीवन के लिए तैयार किया जाता है तथा भविष्य में व्यवसाय चुनने, समाज में सफलतापूर्वक भूमिका निर्वहन करने तथा वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक होती है।
- मार्गदर्शन व्यक्ति में आत्म-निर्देशन की योग्यता को विकसित करता है। वह उसे अपनी समस्याओं का समाधान करने के लिए आत्म निर्भरता प्रदान करता है। अत: इसे निर्देशन का समानार्थक नहीं समझना चाहिए।
- **क्रो एण्ड क्रो** ने निम्न शब्दों में इस तथ्य को स्पष्ट किया है-मार्गदर्शन, निर्देशन देना नहीं। यह अपने दृष्टिकोण को दूसरों पर थोपना नहीं। वे निर्णय जिन्हें व्यक्ति स्वयं ले सकता है उन निर्णयों को उस व्यक्ति को देना भी मार्गदर्शन नहीं। यह दूसरे के जीवन का बोझ उठाना नहीं।' इस प्रकार जो व्यक्ति जिसको मार्गदर्शन प्रदान करता है। वह उसे अपने पर निर्भर नहीं बना लेता और न ही उस पर अपनी इच्छा थोपता है। जिस व्यक्ति का मार्गदर्शन किया जाता है। वह व्यक्ति मार्गदर्शक की राय को लेने या न लेने के लिए स्वतन्त्र होता है। .

www.studyofeducation.com

मार्गदर्शन के सिद्धान्त

मार्गदर्शन कुछ सिद्धान्तों पर आधारित होता हैं। मानव-जीवन में उपयोग के पहले किसी भी विषय के ज्ञान के प्रयोग में निहित विभिन्न कार्यों की जानकारी तथा उस विषय के बुनियादी सिद्धान्तों को समझना आवश्यक है। क्रो एवं क्रो, मैथ्यूसन, डाउनिंग तथा ट्रेक्ससर ने इन सिद्धान्तों की सूची दी है, किन्तु संस्था अपने अनुसार इनके आधार पर अन्य सूची का निर्माण कर सकती है।

मार्गदर्शन के प्रमुख सिद्धान्त निम्न हैं

एक संगठित कार्यकलाप मार्गदर्शन एक प्रासंगिक कार्यकलाप है, जिसमें व्यापक कार्यक्रम होने के बावजूद कुछ प्राप्त करने का एक निश्चित प्रयोजन होता है। इस प्रकार यह एक सुसंगठित तथा व्यवस्थित क्रियाकलाप है।

सहयोग पर आधारित मार्गदर्शन व्यक्तियों के परस्पर सहयोग पर आधारित होता है। व्यक्ति की स्वयं की सहमति के बिना किसी भी व्यक्ति को मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता।

एक आजीवन प्रक्रिया यह आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है, जो जन्म के समय से मृत्युपर्यन्त चलती रहती है। यह ऐसी सेवा नहीं है, जिसे किसी विशेष समय और स्थान पर आरम्भ और समाप्त किया जा सके।

सभी के लिए यद्यपि समायोजित विहीन विद्यार्थियों को उपबोधक से अधिक समय मिलता है, किन्तु मार्गदर्शन का मूल सिद्धान्त यह है कि मार्गदर्शन कुछ व्यक्तियों की अपेक्षा अनेक व्यक्तियों को उपलब्ध होना चाहिए। सामान्य और श्रेष्ठ बालकों पर भी ध्यान देकर उनके बौद्धिक विकास को उद्दीप्त किया जाना चाहिए, क्योंकि मार्गदर्शन प्रत्येक व्यक्ति की क्षमताओं में विकास देखता है।

वैयक्तीकरण पर बल प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए तथा आवश्यकतानुसार व्यक्ति का मार्गदर्शन किया जाना चाहिए। विभिन्न स्तरों पर व्यष्टि सापेक्ष शिक्षा के लिए मार्गदर्शन सेवाओं का उचित संगठन बहुत आवश्यक है, ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यताओं और अभिरुचियों को एक अद्वितीय तरीके से विकसित कर सके।

आत्म-मार्गदर्शन को महत्त्व मार्गदर्शन का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति का विकास इस प्रकार करना है कि उसे मार्गदर्शन की आवश्यकता ही न पड़े, जो छात्र सहायता प्राप्त करना चाहता है, वह अपने उपबोधक से पूछताछ करता है या उससे अपनी समस्याओं को दूर करने के लिए अनुरोध कर सकता है। मार्गदर्शन व्यक्ति को अपने पर्यावरण में अच्छी तरह समायोजित करता है तथा उसे आत्म-निर्भरता तथा आत्म-मार्गदर्शन की ओर अग्रसर करता है।

www.studyofeducation.com

मार्गदर्शन कार्यकर्ताओं की विशेष तैयारी आवश्यक विशेषज्ञ हेतु शिशु विकास, किशोर विकास, मानसिक स्वास्थ्य आदि में ज्ञान और व्यावहारिक अनुभव तथा मनोविज्ञान में प्रशिक्षण होना चाहिए। कार्यकर्ता को इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि उसके समुदाय में किस प्रकार की एजेन्सियाँ और संसाधन उपलब्ध हैं ताकि सहायता प्राप्त करने वाले व्यक्ति इन संसाधनों का उपयोग कर सकें।

आचार संहिता पर बल उपबोधित किए जाने वाले व्यक्तियों के व्यक्तित्व के प्रति सम्मान मार्गदर्शन के नैतिक अनुप्रयोगों में शामिल होता है।

व्यक्तिगत भेदों को सम्मान मार्गदर्शन व्यक्तियों के मध्य व्यक्तिगत भेदों को समझता है तथा प्रत्येक व्यक्ति की विलक्षण समस्याओं, आवश्यकताओं तथा विकासात्मक विशेषताओं को सम्मान प्रदान करता है।

लचीलापन संगठित निर्देशन कार्यक्रम व्यक्ति एवं समुदाय की आवश्यकताओं के अनुसार लचीला होना चाहिए।

अन्तःसम्बन्धित क्रियाकलाप एक प्रभावकारी मार्गदर्शक को व्यक्ति के बारे में सम्पूर्ण सूचना की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि किसी भी समस्या को पूरे कार्यक्रम के साथ सह-सम्बन्ध स्थापित किए बिना अलग से देखना कठिन होता है।

अनभिव्यक्त तथ्यों के उल्लेख का ध्यान मार्गदर्शन से सम्बन्धित सम्पूर्ण व्यवहारों में सर्वाधिक हानिकारक निर्देशन व्यवहार उपयुक्त आँकड़ों के बिना उपबोधन (परामर्श) करना है। बुद्धिमत्तापूर्वक निर्देशन करने के लिए पूरी जानकारी के साथ व्यक्तिगत मूल्यांकन और अनुसन्धान के कार्यक्रम आयोजित होने चाहिए तथा मार्गदर्शन कार्यकर्ताओं के लिए उपलब्धि के सही संचयी रिकॉर्ड उपलब्ध होने चाहिए।

www.studyofeducation.com

मार्गदर्शन की आवश्यकता

वर्तमान समय में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मार्गदर्शन की आवश्यकता अत्यधिक महसूस की जा रही है। शिक्षा मनोवैज्ञानिकों एवं शिक्षाशास्त्रियों ने कुछ ऐसे विशेष कारण बताए हैं, जिससे शिक्षा निर्देशन की आवश्यकता भी अत्यधिक महसूस की जा रही है

वैयक्तिक भिन्नता में वृद्धि वर्तमान में वैयक्तिक भिन्नता पहले की अपेक्षा बढ़ती जा रही है। प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताएँ, अभिरुचि एवं क्षमता आदि में विभिन्नता पाई गई है। इस तरह की वैयक्तिक विभिन्नता के कारण मार्गदर्शन की आवश्यकता अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गई है। इसके अभाव में छात्रों द्वारा एक-दूसरे को देखा-देखी कर सामान्यतः एक ही मार्ग पर चलने की कोशिश की जाती है चाहे उनकी योग्यता व अभिरुचि कुछ भी हो। जिससे उन्हें असफलता का सामना करना पड़ता है। अत: मार्गदर्शन के द्वारा प्रत्येक छात्र को उसकी क्षमता, आवश्यकता व अभिरुचि के अनुकूल सफलता का मार्ग प्रशस्त किया जाता है।

जीविका के अवसर सामान्यतः यह देखा गया है कि छात्रों को यह ज्ञान नहीं होता कि कौन-सा विषय लेने से उन्हें किस व्यवसाय में सहायता मिलेगी। उन्हें यह भी ज्ञात नहीं होता कि किस विषय के द्वारा भविष्य में रोजगार के अधिक अवसर प्राप्त होंगे तथा अपनी योग्यता अनुसार किस विषय का चयन करके उन्हें भविष्य में सफलता मिलेगी। मार्गदर्शन के द्वारा उन्हें इस बात से अवगत कराया जाता है कि अमुक विषय को पढ़ने से उन्हें किस प्रकार व्यवसाय में सहायता मिलेगी तथा रोजगार के अधिक अवसर मिलेंगे। अत: भविष्य की सम्भावित आजीविकाओं एवं अवसरों से परिचित कराने के लिए मार्गदर्शन को अत्यन्त आवश्यकता है।

समायोजन की आवश्यकता व्यक्तिगत विभिन्नता के कारण प्राय: सभी छात्र एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। कुछ संकोची एवं शंकालु तो कुछ सामाजिक, दयालु एवं उदार प्रवृत्ति के होते हैं। व्यक्तिगत विभिन्नता व अन्य कारणों से विपरीत परिस्थितियों के कारण वातावरण में समायोजन नहीं कर पाते, जिससे उनका मानसिक स्वास्थ्य व भविष्य प्रभावित होता है। अतः ऐसी परिस्थितियों में नए वातावरण के साथ समायोजन करने तथा विपरीत परिस्थितियों का सामना करने के लिए मार्गदर्शन की अत्यन्त आवश्यकता होती है। .

शिक्षण के उद्देश्य एवं पाठ्यक्रम में परिवर्तन वर्तमान समय में शिक्षा के उद्देश्य में परिवर्तन आ गए हैं। पहले शिक्षा उद्देश्य बालकों का बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास करना था, परन्तु आजकल शिक्षा का उद्देश्य बालकों को भावी जीवन के लिए इस प्रकार तैयार करना है कि वे भावी जीवन के लिए पूर्णतः तैयार हो सकें तथा सभी प्रकार की व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं का हल कर सके। इस दिशा में उन्हें मार्गदर्शन की अत्यन्त आवश्यकता होती है। इसी के साथ आधुनिक समय में विद्यालय में जो विषय अथवा पाठ्यक्रम पढ़ाएं जाते हैं। उनका स्वरुप पहले से अधिक विस्तृत एवं भिन्न हो गया है, क्योंकि अब पाठ्यक्रम मात्र बौद्धिक विकास से सम्बन्धित न होकर, सामाजिक विकास एवं भविष्य के रोजगार एवं व्यवसाय से भी सम्बन्धित है। ऐसी परिस्थितियों में छात्रों को उचित मार्गदर्शन देकर उन्हें इस योग्य बनाया जा सकता है कि वे परिवर्तित पाठ्यक्रमों के साथ समायोजन कर सकें। .

व्यावसायिक चयन आधुनिक शिक्षा रोजगारोन्मुखी एवं व्यावहारिक होती जा रही है। विद्यालयों में भी उन विषयों की शिक्षा पर अधिक बल डाला जा रहा है, जिनसे छात्रों को भविष्य में रोजगार मिल सके या वे स्वयं अपना रोजगार करने में सक्षम हो। यही कारण है कि आज विद्यालय में गृह विज्ञान,ललित कला तथा वाणिज्य जैसे अनेक पाठ्यक्रमों की पढ़ाई कराई जा रही है। ऐसी स्थिति में बालकों को उचित मार्गदर्शन देकर इन पाठ्यक्रमों में उनकी अभिरुचि के अनुकूल उचित पाठ्यक्रम को चुनने तथा उसमें सफलता प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

www.studyofeducation.com

शिक्षा अपव्यय की रोकथाम प्रायः देखा जाता है कि कुछ छात्र पूर्ण साक्षरता प्राप्त किए बिना ही स्कूल छोड़ देते हैं, जिसके भिन्न-भिन्न कारण हो सकते हैं। सामान्यतः परीक्षा में कई बार असफल होने के कारण वे शिक्षा के प्रति उदासीन हो जाते हैं। परिणामस्वरुप विद्यालय छोड़ देते हैं। ऐसी स्थिति में उनके द्वारा प्राप्त की गई शिक्षा भी पूर्ण न हो पाने के कारण फलदायी नहीं हो पाती। अतः ऐसी स्थिति में उन्हें पूर्ण स्तर तक शिक्षा प्राप्त करने हेतु प्रोत्साहित करने के लिए मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। टिली ने अपने अध्ययन के आधार पर कहा है कि शैक्षिक मार्गदर्शन की आवश्यकता ऐसे छात्रों को सामान्य छात्रों से अधिक होती है।

मार्गदर्शन के प्रकार

मार्गदर्शन एक अन्तर्सम्बद्ध बहुमुखी एवं सतत प्रक्रिया है। यह मानव जीवन के सभी आयामों से सम्बन्धित है। मार्गदर्शन को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया गया है

शैक्षिक मार्गदर्शन

शिक्षा के सम्बन्ध में शिक्षार्थियों को जो मार्गदर्शन दिया जाता है, उसे शैक्षिक मार्गदर्शन कहते हैं। बुद्धि अभिरुचि, रुझान तथा स्वभाव की दृष्टि से सभी बालक एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। इसी तरह विभिन्न शिक्षणों के लिए विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण, योग्यता, रुचि आदि की आवश्यकता होती है। अतः किसी विषय का शिक्षण तभी सफल एवं प्रभावशाली हो सकता है, जबकि वह बालक की योग्यता, आवश्यकता, रुचि आदि के अनुकूल हो।

www.studyofeducation.com

अतः कहा जा सकता है कि "शैक्षिक मार्गदर्शन वह प्रक्रिया है, जो शिक्षार्थी को अपनी मानसिक शक्तियों को समझने, अपने विशिष्ट मेधा एवं प्रवृत्तियों का अन्वेषण करने, तद्नुसार शिक्षा सम्बन्धी चुनाव करने तथा उसके साथ अनुकूलन करने में सहायता करती है।"

शैक्षिक मार्गदर्शन के उद्देश्य

शैक्षिक मार्गदर्शन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं

- **शिक्षार्थी को अपनी सम्भाव्यताओं को समझने में सहायता करना** मार्गदर्शन एक मुख्य उद्देश्य शिक्षार्थी को अपनी योग्यताओं, आवश्यकताओं तथा प्रवृत्तियों को यथार्थ रुप में समझने में उसकी सहायता करना होता है।

- **सम्भाव्यताओं को स्वीकार करने में शिक्षार्थी की सहायता करना** मार्गदर्शन का उद्देश्य केवल व्यक्ति को उसकी योग्यताओं से अवगत कराना नहीं है, बल्कि उसे इस योग्य बना देना है कि वह उन्हें उसी रूप में स्वीकार करे तथा सराहे ताकि वह अपनी शैक्षणिक योजना के अनुकूल साहस, धैर्य तथा आत्म-विश्वास के साथ कदम उठाने में समर्थ हो सके। .

- **आत्म निर्देशित प्रयास करने में शिक्षार्थी की सहायता करना** शैक्षिक मार्गदर्शन का उद्देश्य यह भी है कि बालकों को उनकी योग्यता के आधार पर उचित दिशा में आगे बढ़ाया जाए।

- **उपलब्ध साधनों की लेखा रखने में शिक्षार्थी की सहायता करना** मार्गदर्शन का उद्देश्य विद्यार्थी को इस योग्य बनाने में सहायता करना है कि वह अपने उपलब्ध साधनों का लेखा रखने में समर्थ हो सके। .

- **शैक्षिक चुनाव में सहायता करना** आज की शिक्षा पद्धति व्यावहारिक तथा व्यावसायिक हो गई है। वर्तमान शिक्षा का उद्देश्य बालकों को मात्र पढ़ना-लिखना सिखाना नहीं, बल्कि उन्हें इस योग्य बना देना है कि वे अपनी योग्यता, आवश्यकता एवं अभिरुचि के अनुकूल व्यवसाय करके अपने आप को समाज में समायोजित कर सकें। अतः मार्गदर्शन का एक मुख्य उद्देश्य उचित व्यवसाय को चुनने में बालकों की सहायता करना है।

- **व्यक्तिगत कल्याण में सहायता करना** शिक्षा मार्गदर्शन का उद्देश्य शिक्षार्थी को इस योग्य बनाने में सहायता करना है कि वह अपने लिए हितकर तथा कल्याणकारी प्रमाणित हो सकें। वह एक उचित व्यवसाय करके अपने जीवन को उन्नत व सुखद बना सके।

www.studyofeducation.com

शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर मार्गदर्शन

विद्यार्थियों को शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है, जिनका वर्णन निम्नलिखित है

प्राथमिक विद्यालयों में मार्गदर्शन

प्राथमिक स्तर पर मार्गदर्शन व्यवस्था का प्रशासन विद्यालय के प्रधान के हाथों में होता है। इस स्तर पर कक्षा पाँच तक के बालक अध्ययन करते हैं। इस स्तर पर बालक कम अध्यापकों के सम्पर्क में आता है, परन्तु उनके पास अधिक अवधि तक रहता है। कक्षाध्यापक छात्रों के अधिक सम्पर्क में रहता है, अतः वह उनकी समस्याओं को भली-भाँति समझता है। मार्गदर्शन शिक्षा का अभिन्न अंग होता है। अतः कोठारी आयोग ने प्राथमिक स्तर से ही मार्गदर्शक कार्यक्रम आरम्भ करने का सुझाव दिया था।

माध्यमिक विद्यालयों में मार्गदर्शन

माध्यमिक विद्यालय प्राथमिक तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के मध्य कड़ी का काम करते हैं। अत: इस स्तर पर मार्गदर्शक सेवाओं के संगठन में संस्था प्रधान के द्वारा उत्तम योजना, पर्यवेक्षण तथा समन्वय की अपेक्षा होती है। प्रत्येक विद्यालय में मार्गदर्शन कार्य का प्रतिमान का स्वरुप भी भिन्न होगा। यह स्तर शैक्षिक एवं व्यावसायिक मार्गदर्शन की ही आवश्यकता से सम्बन्धित नहीं होता वरन् यह बालक के व्यक्तित्व के सभी पक्षों की समस्याओं से भी सम्बन्धित होता है।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर मार्गदर्शन

इन विद्यालयों में मार्गदर्शन क्रियाओं एवं कार्मिकों की अधिक आवश्यकता होती है। इस स्तर पर मार्गदर्शक व्यवस्था का रुप निम्नांकित प्रकार का हो सकता है

उच्च शिक्षा हेतु मार्गदर्शन

सीनियर सेकण्डरी पास करने के बाद कुछ विद्यार्थी महाविद्यालय में प्रवेश लेना चाहते हैं. परन्तु इस स्तर पर प्रवेश की जो शर्तें होती हैं उनकी जानकारी देने हेतु मार्गदर्शन की अति आवश्यकता होती है। इस स्तर पर विद्यार्थियों को निम्नलिखित सूचनाओं से अवगत कराया जाना आवश्यक होता है

- विद्यार्थी की आकांक्षा, योग्यता व रुचि के अनुकूल कौन-से महाविद्यालय उपलब्ध हो सकते हैं?
- महाविद्यालयों में प्रवेश की शर्तें, पाठ्यक्रम, वार्षिक व्यय आदि से अवगत कराना महाविद्यालय की प्रस्थिति कैसी है?
- महाविद्यालय में अध्ययनोपरान्त व्यवसाय के अवसर व सुविधाएँ क्या हैं?
- महाविद्यालयों के परिदर्शन की योजना भी बनाई जा सकती है।
- इस स्तर पर विशेषज्ञों का होना अनिवार्य होता है।

www.studyofeducation.com

व्यावसायिक मार्गदर्शन

व्यवसाय के क्षेत्र में जब मार्गदर्शन का उपयोग किया जाता है, तो इसे व्यावसायिक मार्गदर्शन (Vocational Guidance) कहते हैं। यह एक वास्तविकता है कि न तो हर काम के लिए हर व्यक्ति योग्य होता है और न हर व्यक्ति के लिए हर काम उपयुक्त होता है। कारण यह कि हर व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं में एक-दूसरे से भिन्न होता है और इसी तरह हर काम के लिए विभिन्न योग्यताओं की आवश्यकता विभिन्न मात्रा में होती है। अतः कार्य सन्तुष्टि के लिए उचित व्यक्ति के लिए उचित कार्य आवश्यक है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मार्गदर्शन का उपयोग व्यवसाय के क्षेत्र में किया जाता है। अतएव मार्गदर्शन-प्रक्रिया उचित व्यक्ति के लिए उचित कार्य के चुनाव में सहायता करती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि "व्यावसायिक मार्गदर्शन वह कार्य प्रक्रिया है, जो व्यक्ति को उचित व्यवसाय के चयन तथा प्रगति में उनके गुणों तथा व्यावसायिक सुविधा को ध्यान में रखते हुए सहायता करती है।"

जब बालक स्कूल तथा कॉलेज में प्रवेश लेता है, उसी समय व्यावसायिक मार्गदर्शन का प्रारम्भ होता जाता है। विभिन्न विषयों का चुनाव अपनी योग्यता, आवश्यकता, अभिरुचि तथा उपलब्ध साधनों के अनुकूल करने के लिए व्यावसायिक मार्गदर्शन उपयोगी सिद्ध हुआ है।

www.studyofeducation.com

व्यक्तिगत मार्गदर्शन

व्यक्तिगत मार्गदर्शन (Personal Guidance) का तात्पर्य उस प्रक्रिया से है, जो व्यक्ति को वैयक्तिक समस्याओं के समाधान में सहायक होती है। स्मरण रखना चाहिए कि मार्गदर्शक व्यक्ति की समस्याओं का समाधान नहीं करता, बल्कि उसे अपनी समस्याओं को समझने तथा समाधान करने में मात्र सहायता करता है। वह इस प्रकार का वातावरण उत्पन्न कर देता है कि व्यक्ति अपनी योग्यताओं एवं उपलब्ध साधनों और बाह्य परिस्थिति की कठिनाइयों एवं सुविधाओं के बीच एकरूपता कायम करने में समर्थ हो जाता है। अतः कहा जा सकता है कि व्यक्तिगत मार्गदर्शन एक ऐसी सहायता है जो, किसी व्यक्ति को जीवन के समस्त क्षेत्रों एवं व्यवहार के विकास में सामंजस्य बिठाने के लिए दिया जाता है। व्यक्तिगत मार्गदर्शन में सामाजिक, भावात्मक, नैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, अवकाश समय मार्गदर्शन शामिल हैं। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में जो भी विशेषताएँ हों, परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि इसने ऐसे असंख्य डिग्री/डिप्लोमा धारकों का निर्माण किया है, जिनकी शैक्षिक व व्यावसायिक प्राप्ति मानसिक योग्यता एवं अभिरुचि के अनुसार नहीं हुई है।

स्वास्थ्य मार्गदर्शन

स्वास्थ्य के सन्दर्भ में दिया जाने वाला मार्गदर्शन स्वास्थ्य मार्गदर्शन कहलाता है। स्वास्थ्य मार्गदर्शन (Health Guidance) जीवन शैली के विकृत रूप में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है। वर्तमान समय में अधिकांश व्यक्ति शारीरिक या मानसिक अथवा दोनों प्रकार की समस्याओं से ग्रसित है, जिसके निदान के लिए उन्हें मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। इसी के साथ रोग निदान व उपचार के बाद उस विकृति के दोबारा होने की सम्भावना उसके बचाव के लिए क्या-क्या सावधानियाँ अपनाई जाएँ आदि में मार्गदर्शन की विशेष भूमिका है।

वर्तमान समय में निम्नलिखित उद्देश्यों के आधार पर स्वास्थ्य मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है।

- आरोग्य व दीर्घजीवी जीवन की शैली किस रुप में होनी चाहिए यदि स्वास्थ्य सम्बन्धी जिज्ञासाओं का मार्गदर्शन की सहायता से समाधान किया जा सकता है।

- आजकल की अस्त-व्यस्त जीवन शैली व्यक्ति की स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का महत्त्वपूर्ण कारण होती है।अत: यह जानने के लिए भी मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है कि आहार-विहार, खानपान, रहन-सहन, कार्यशीलता व व्यायाम को व्यवस्थित रुप में किस प्रकार स्वरुप देना चाहिए, जिससे स्वस्थ मस्तिष्क एवं स्वस्थ शरीर को प्राप्त किया जा सके।

- लैंगिक विकृतियों का मुख्य कारण व्यक्ति का व्यवहार होता है। अत: इस सम्बन्ध में व्यक्ति को समुचित मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है।

- किसी रोग अथवा विकृति के लिए आवश्यक उपचार किस प्रकार तथा कहाँ से प्राप्त किया जाए, किस रोग में क्या उपचार लेना लाभकारी होगा आदि विकल्पों के चयन में व्यक्ति की सहायता करने के लिए मार्गदर्शन अत्यन्त आवश्यक है।

- विभिन्न रोगों से बचाव की विधियों से व्यक्तियों को अवगत कराने तथा रोग प्रतिरोधक वाली जीवन-शैली को अपनाने में सहायता करने हेतु मार्गदर्शन अत्यन्त आवश्यक है।

सामाजिक मार्गदर्शन

सामाजिक मागदर्शन (Social Guidance) से तात्पर्य सामाजिक समस्याओं; जैसे-सामाजिक समायोजन, नैतिक मूल्य, स्वावलम्बन, स्वतन्त्रता, जीविकोपार्जन आदि के समाधान हेतु दिए गए मार्गदर्शन से है। जिससे व्यक्ति अपनी सामाजिक समस्याओं का समाधान कर सामाजिक वातावरण में समायोजन स्थापित कर सके तथा कुशलतापूर्वक जीवन निर्वाह कर सके।

सामाजिक मार्गदर्शन निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति के आधार पर किया जा सकता है

www.studyofeducation.com

- सामाजिक रुप से स्वयं को विकसित कर वयस्कता अर्जित करना।
- जीविकोपार्जन हेतु स्वयं को तैयार करना।
- वयस्कों एवं बड़ों से सांवेगिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना।
-
- आर्थिक रुप से स्वावलम्बन व स्वतन्त्रता प्राप्त करना।
- पारिवारिक व वैवाहिक जीवन तथा उसके दायित्वों को समझना एवं स्वयं उसके लिए तैयार होना।
- बौद्धिक क्षमता व सम्प्रत्यय स्तर को तैयार करना व्यक्ति के विविध मूल्यों तथा नैतिकता आदि की पृष्ठभूमि तैयार करना।
- सामाजिक भूमिका को महिला पुरुष की विविधता के साथ अर्जित करना अर्थात् स्त्री-पुरुष दोनों की सामाजिक भूमिका को पूर्णतया जानना।
- अपने आयुवर्ग के विषम लिंगियों के साथ उपयुक्त व स्वस्थ सम्बन्ध को सहजता से विकसित करना।

www.studyrateducation.com

मार्गदर्शन में तकनीकों का प्रयोग

विद्यार्थी और व्यक्ति के व्यवहार के अनेक पक्ष होते हैं। अत: मार्गदर्शन में तकनीक/प्रविधि का विशेष महत्त्व है। मार्गदर्शन प्राप्त करने वाले व्यक्ति से सम्बन्धित मूलभूत आँकड़ों व सूचनाओं के संकलन के लिए मार्गदर्शन जो तकनीकें अपनाता है उन्हें दो वर्गों प्रमापीकृत/मानकीकृत तकनीकें एवं अप्रमापीकृत/अमानकीकृत तकनीकों में विभाजित किया जा सकता है।

(0 प्रश्नावली (ii) प्रक्षेपण (vi) साक्षात्कार तकनीक प्रमापीकृत/मानकीकृत अप्रमापीकृत/अमानकीकृत (1) बुद्धि परीक्षण (ii) व्यक्तित्व परीक्षण (iii) अभियोग्यता परीक्षण (iii) समाजमिति (iv) रुचि परीक्षण (iv) व्यक्ति अध्ययन (केस स्टडी) (v) उपलब्धि निष्पत्ति परीक्षण (v) संचयी वृत्ति

1. प्रमापीकृत तकनीक

प्रमापीकृत तकनीकों का विवरण इस प्रकार है

बुद्धि परीक्षण

बुद्धि एक अत्यन्त जटिल मानसिक प्रक्रिया है। स्टर्न के अनुसार, "जीवन की नई समस्याओं के प्रति सामान्य अभियोजनशीलता को बुद्धि कहते हैं।" बकिंघम के अनुसार, "बुद्धि सीखने की योग्यता है।" बिने कहते हैं, "किसी समस्या को समझना, उसके विषय में तर्क करना तथा किसी निश्चित निर्णय पर पहुँचना बुद्धि की आवश्यक क्रिया है।"

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बुद्धि कुछ करने की योग्यता है अर्थात् बुद्धि ज्ञान नहीं है, बल्कि ज्ञान को प्राप्त करने की योग्यता बुद्धि है, बुद्धि विचार नहीं है बल्कि विचार करने की योग्यता बुद्धि है।

प्रशासन आधारित बुद्धि-परीक्षण

व्यक्तियों की संख्या के आधार पर बुद्धि-परीक्षण को दो भागों में विभाजित किया गया है। व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण में एक समय पर एक ही व्यक्ति की बुद्धि का मापन किया जाता है। यदि एक समय में अनेक व्यक्तियों पर प्रशासन कर बुद्धि परीक्षा ली जाती है, तो उसे सामूहिक बुद्धि-परीक्षण कहते हैं।

विषय-वस्तु आधारित बुद्धि-परीक्षण

विषय-वस्तु के आधार पर बुद्धि-परीक्षण के दो भाग हैं। शाब्दिक बुद्धि परीक्षण का प्रयोग पढ़े-लिखे लोगों पर ही प्रशासित किया जा सकता है। शाब्दिक बुद्धि-परीक्षण व्यक्तिगत भी हो सकता है और सामूहिक भी। व्यक्तिगत शाब्दिक बुद्धि-परीक्षण के समर्थक हैं-वैश्लर वैलेव्यू, बर्ट का तर्क-शक्ति परीक्षण, मिनेसोटा, जैलिस विकास अनुसूची, मैरिल पामर मानसिक परीक्षण। इनमें से कुछ को संशोधित रूप में भारत में भी अपना लिया गया है। 2

अशाब्दिक परीक्षण वह होता है, जिसमें केवल कागज एवं पेंसिल से कुछ करना होता है। बिना पढ़े-लिखे बालक इन्हें कर सकते हैं। इसके द्वारा मूर्त बुद्धि की परीक्षा ली जाती है। इस परीक्षण विधि में वास्तविक वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है।

व्यक्तित्व परीक्षण

व्यक्तित्व में व्यक्ति की शारीरिक, सामाजिक, संवेगात्मक (भावात्मक) तथा वैयक्तिक सभी प्रकार की विशेषताओं का समावेशन होता है।

व्यक्तित्व परीक्षण की विधियाँ

व्यक्तित्व परीक्षण की निम्नलिखित विधियाँ हैं

www.studyofeducation.com

व्यक्तिनिष्ठ विधियाँ व्यक्तिवृत्त अध्ययन विधि में व्यक्ति का अवलोकन अत्यन्त उपयोगी है। बिसेंज एवं बिसेंज के अनुसार, "व्यक्तिवृत्त अध्ययन एक प्रकार का गुणात्मक विश्लेषण है जो किसी व्यक्ति, स्थिति या संस्था का सावधानीपूर्वक किया गया अवलोकन है।" इस विधि द्वारा प्रार्थी के पूर्व जीवन के तथ्यों का संकलन किया जाता है और संकलित तथ्यों के आधार पर उनका विश्लेषण किया जाता है। इस विधि द्वारा प्रदत्त अनेक स्रोतों से एकत्रित किए जा सकते हैं-व्यक्ति द्वारा, माता-पिता द्वारा, पड़ोसियों द्वारा, मित्रों द्वारा, सम्बन्धियों द्वारा, शिक्षकों द्वारा।

वस्तुनिष्ठ विधियाँ निर्धारण मापनी शब्दों, वाक्यों और परिच्छेदों की ऐसी चयनित सूची होती है, जिसके आधार पर प्रेक्षक, मूल्यों के वस्तुनिष्ठ मापन पर आधारित, किसी मूल्य या माप को अभिलेखित करता है। यह एक विशेष प्रकार की जाँच-सूची होती है, जिसमें जाँच की गई विशेषताओं या गुणों की उपस्थिति या अभाव का गुणात्मक या संख्यात्मक निर्धारण किया जाता है। .

अभियोग्यता परीक्षण

अभियोग्यता आंग्ल भाषा के 'एस्टोप्स' से बना है, जिसका अर्थ होता है 'उपयुक्त'। ट्रक्सलर के अनुसार, "अभियोग्यता वर्तमान दशा है, जो व्यक्ति की भविष्य की क्षमताओं की ओर संकेत करती है।"

थर्स्टन एवं अन्य मनोवैज्ञानिकों के अनुसार यह बहुकारक सिद्धान्तों पर आधारित है। इसे निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है -

- **सामान्य अभियोग्यता परीक्षण** इसका निर्माण संयुक्त राष्ट्र रोजगार सेवा द्वारा किया गया। इसमें 12 परीक्षण शामिल हैं।
-
- **विभेदक अभियोग्यता परीक्षण** इसका निर्माण वर्ष 1947 में जॉर्ज कैबेनेट जी, सीशोर तथा वेसमैन द्वारा किया गया। इसका उद्देश्य समन्वित वैज्ञानिक एवं मानकीकृत रुप से 8-12 की कक्षाओं में अध्ययनरत विद्यार्थियों को शैक्षिक व व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करना था। .
- **विशिष्ट योग्यता परीक्षण** विशिष्ट क्षेत्र; जैसे-संगीत, कला, वैज्ञानिक, चिकित्सा, यान्त्रिक, लिपिकीय, शिक्षण आदि सम्बन्धित अभियोग्यता का परीक्षण किया जाता है।
- **रुचि परीक्षण** रुचि को अंग्रेजी में इण्ट्रेस्ट कहा जाता है। सुपर के अनुसार, रुचि पृथक् मनोवैज्ञानिक इकाई नहीं है बल्कि सम्पूर्ण मानव व्यवहार का एक पहलू है। अतः इसमें मानव व्यवहार की सभी गतिविधियों का परीक्षण किया जाता है।

अभियोग्यता परीक्षण की विधियाँ

अभियोग्यता परीक्षण की विधियाँ निम्नलिखित हैं

www.studyofeducation.com

- **प्रेक्षण विधि** कोई व्यक्ति वास्तविक रुप में क्या करता है इससे उसकी अभिरुचियों का पता चलता है।
- **उपबोधक का अभिमत** अभिरुचियों से भी उसकी पसन्द का आभास होता है। उपकरणों का उपयोग मिशीगन शब्दावली जैसे उपकरणों के प्रयोग द्वारा हम अभिरुचियों का पता लगा सकते हैं। . .
- **अभिरुचि तालिकाओं का प्रयोग** वरीयताओं पर आधारित अनुसूचियों का निर्माण कर अपेक्षाकृत अधिक स्थिर प्रकृति की सूचनाएँ उपलब्ध हो सकती हैं।

रुचि परीक्षण

किसी वस्तु, व्यक्ति, प्रक्रिया, तथ्य, कार्य आदि को पसन्द करने या उसके प्रति आकर्षित होने, उस पर ध्यान केन्द्रित करने या उससे सन्तुष्टि पाने की प्रवृत्ति को ही रुचि कहते हैं। रुचि परीक्षण के अन्तर्गत दो विधियाँ प्रचलित हैं, जिनका परीक्षण किया जाता है

- **आत्मनिष्ठ परीक्षण** इसमें व्यक्ति की रुचि को जानने के लिए प्रत्यक्ष प्रश्न पूछा जाता है, लेकिन इस प्रकार प्राप्त जानकारी काल्पनिक, अविश्वसनीय एवं अवैध होती है।

- **वस्तुनिष्ठ परीक्षण** रुचियों के वैज्ञानिक व विश्वसनीय मापन हेतु सर्वप्रथम प्रयास वर्ष 1913 में कनीगी इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्लोलॉजी ने किया। इसके बाद अनेक रुचि तालिकाओं का निर्माण किया गया।

www.studypheducation.com

उपलब्धि या निष्पत्ति परीक्षण

इस परीक्षण के द्वारा छात्रों का मापन तब करते हैं, जब छात्र प्रशिक्षण कर लेते हैं। इससे अध्यापक यह जान सकता है कि छात्र ने कितनी उन्नति की है। फ्री मैन के अनुसार, "उपलब्धि परीक्षण वह अभिकल्प है, जो एक पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों में व्यक्ति के ज्ञान, समय व कौशल का मापन करता है।"

उपलब्धि परीक्षण के प्रकार

प्रमापीकृत परीक्षण यह विषय निष्ठ परीक्षण है, जिनके मानक तैयार किए जाते हैं। इसके निम्नलिखित लक्षण हैं-अन्तर्वस्तु की वैधता, समान ढंग से संचालन, जाँचने की सुगमता और वस्तुनिष्ठता, मानक तथा विश्वसनीयता। उपलब्धि परीक्षण व्यक्ति की आपेक्षिक सफलता बताते हैं। .

उपलब्धि लब्धि = शिक्षा आयु /मानसिक आयु x100

अध्यापक द्वारा निर्मित उपलब्धि परीक्षण यह परीक्षण लिखित, मौखिक तथा प्रयोगात्मक रूप में विद्यार्थियों की उपलब्धि मापने हेतु प्रयुक्त किए जाते हैं। उपलब्धि परीक्षण का उपयोग अधिगम-मापन के सम्बन्ध में किया जाता है। अधिगम मापन से सम्बन्धित स्थितियाँ हैं। अधिगम की मात्रा, अधिगम की गति, दूसरों के साथ तुलना, उपक्षेत्रों में अधिगम का स्तर, विषय-वस्तु के क्षेत्र में गुणवत्ता।

2. अप्रमापीकृत तकनीक

अप्रमापीकृत तकनीकों का विवरण इस प्रकार हैं

प्रश्नावली

प्रश्नावली प्रश्नों की वह सूची है, जो व्यक्ति से सूचनाएँ एकत्रित करने के लिए तैयार की जाती हैं।

गुडे एण्ड हॉट के अनुसार, "सामान्यतः प्रश्नावली से तात्पर्य वह साधन या प्रविधि से है, जो किसी व्यक्ति से प्रश्नों का एक कार्य प्रयोग करके उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त होती है।" "

मिल्ड्रेड पारटन के अनुसार, "यह एक फार्म होता है जो डाक द्वारा बाँटा जाता है या व्यक्ति द्वारा निरीक्षक के निरीक्षण में भरा जाता है।" प्रश्नावली का वर्गीकरण जॉन बेस्ट ने दिया है।

उसके अनुसार प्रश्नावली दो वर्गों में बाँटी जा सकती है

www.studyofeducation.com

- **बन्द फार्म संचारित प्रश्न संवृत्त प्रश्न** - ऐसी प्रश्नावली का उत्तर हाँ या ना में होता है। इसे भरने मे कम समय लगता है। इसे हल करना आसान होता है। यह वस्तुनिष्ठ प्रकृति का होता है।
- **मुक्त फार्म स्वतन्त्र अनुक्रिया मुक्तोत्तर प्रश्न** - खुले रुप वाले प्रश्नो का उत्तर देते समय व्यक्ति सोचता है और लिखता है; जैसे-आपका प्रिय खेल कौन-सा है?

प्रश्नावली विधि आर्थिक रुप से सस्ती होती है और एक समय में इसका प्रयोग बड़े समूह पर किया जा सकता है। प्रश्नावली द्वारा अनुक्रिया देने के लिए, पर्याप्त समय दिया जा सकता है, लेकिन प्रश्नावली का प्रयोग बच्चों और अशिक्षितों के साथ नहीं किया जा सकता। प्रश्नावली द्वारा प्राप्त सूचनाएँ बहुत अधिक विश्वसनीय नहीं होतीं। प्रश्नावली द्वारा जटिल विषयों के बारे में सूचनाएँ प्राप्त नहीं की जा सकतीं।

प्रक्षेपण

प्रक्षेपण से अभिप्राय एक प्रकार की क्रिया से है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी दबी इच्छाओं को प्रकट करता है, जो प्रकट न होने के कारण अचेतन मन में जमा हो जाती है और अवसर मिलने पर वस्तु या व्यक्ति की ओर परिवर्तित होकर प्रकट कर सकती है। प्रक्षेपण विधियों के प्रकार निम्नलिखित हैं

- **रोर्शा परीक्षा** स्विट्जरलैण्ड के हरमन रोर्शा ने वर्ष 1921 में इसका निर्माण किया। इस परीक्षण में 10 कार्ड हैं-कार्ड (भूरे रंग के हैं), कार्ड (भूरे व लाल रंग के हैं) एवं कार्ड (अन्य विभिन्न रंगों के हैं)। सभी कार्ड विभिन्न प्रकार के स्याही के धब्बों से सुसज्जित हैं। इन आकृतियों को देखकर प्रयोज्य की प्रतिक्रिया उसके कार्डों को पकड़ने के ढंग तथा चेहरे के भावों का लेखा-जोखा रखा जाता है।

- **प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण** इस परीक्षण का निर्माण वर्ष 1953 में मुरे तथा मॉर्गन ने किया। इस परीक्षण में चित्र दिए गए हैं, जो मानव-जीवन की सामान्य घटनाओं से सम्बन्धित हैं। इस परीक्षण में 30 कार्ड हैं जो (10 पुरुषों हेतु, 10 स्त्रियों हेतु तथा 10 दोनों के लिए) मानकीकृत तस्वीरों वाले होते हैं। एक-एक कार्ड प्रयोज्य को दिखाकर इस पर 5 मिनट में छोटी-सी कहानी लिखने को कहा जाता है। सामूहिक रुप से इस परीक्षण को प्रोजेक्टर आदि के माध्यम से चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है।

- **बालक बोध परीक्षण** इस परीक्षण के जन्मदाता लियोपोल्ड बैलक ने इस परीक्षण का प्रतिपादन वर्ष 1948 में किया। यह परीक्षण 3-10 वर्ष की आयु वाले बालकों के लिए प्रयुक्त होता है। इस परीक्षण में 10 चित्र काड्र्स हैं, जो जानवरों के हैं। इसके पीछे मान्यता यह है कि बालक जानवरों के व्यवहारों के प्रति तत्परता एवं शीघ्रता से उत्तर देंगे।

www.studyofeducation.com

- **वाक्य पूर्ति परीक्षण** वर्ष 1987 में जबलपुर के एलएन दुबे तथा अर्चना दुबे द्वारा विकसित 50 पद वाले परीक्षण में व्यक्तित्व की तीन विशेषताओं सामाजिकता, आत्मविश्वास, महत्त्वाकांक्षा का मापन होता है।

समाजमिति

इस तकनीक का प्रयोजन समूह में व्यक्ति विशेष के सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करना है। करलिंगर के अनुसार, "समाजमिति एक व्यापक पद है, जो समूहों में व्यक्तियों के विकल्प सम्प्रेषण तथा अन्तःक्रिया के प्रतिमानों के प्रति आंकड़ों के संकलन तथा विश्लेषण की विभिन्न विधियों की ओर संकेत करता है।"

एण्ड्रू एवं विले के अनुसार, "समाजमिति एक ग्राफिक चित्र है जिसमें कुछ चिह्नों का प्रयोग इसलिए किया जाता है ताकि सामाजिक समूह के सदस्यों की स्वीकृति व अस्वीकृति के नमूने को प्रकट किया जा सके।"

www.studyoeducation.com

समाजमिति से प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण की तीन प्रविधियाँ हैं

- **समाजमितीय मैट्रिक्स** वर्गाकार प्रदर्शन जो n+n होता है। यहाँ n से तात्पर्य समूह में सदस्यों की संख्या से है। समाजमितीय मैट्रिक्स का विश्लेषण यह देखते हुए किया जाता है कि कौन किसे पसन्द करता है? समूह में कुछ छात्र ऐसे हैं, जिन्हें अधिकतर छात्र पसन्द करते हैं। छात्र के समाजमितीय मैट्रिक्स के कॉलम का उपयोग सबसे अधिक होता है। समूह में कुछ छात्र ऐसे होते हैं जो दूसरों को पसन्द करते हैं, परन्तु उन्हें कोई पसन्द नहीं करता। ऐसे छात्र को बहिष्कृत छात्र कहा जाता है। समूह में कई गुटों का भी निर्माण हो जाता है, जिनकी पसन्द-नापसन्द एक होती है इसे Clique या गुट कहते हैं।

- **समाज आलेख** इस विधि में समूह के सदस्यों द्वारा एक-दूसरे के प्रति व्यक्ति पसन्दों को एक आलेख द्वारा (Graph) या चित्र द्वारा बनाकर दिखाते हैं। तीर द्वारा पसन्द को प्रदर्शित किया जाता है। .

A → B = छात्र A छात्र B को पसन्द करता है, परन्तु छात्र B छात्र A को पसन्द नहीं करता

A - B = दोनों एक-दूसरे को पसन्द करते हैं।

B को सर्वाधिक लोगों ने पसन्द किया। अतः यह लोकप्रिय छात्र है जबकि A समूह का अस्वीकृत सदस्य है। छात्र C तथा F पारस्परिक युग्म तथा I, J, K का एक गुट है तथा छात्र G अकेला है। समाजमितीय मैट्रिक्स की तुलना में समाज आलेख अधिक लाभप्रद है, क्योंकि इसे देखने मात्र से ही समूह के सदस्यों के अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों का पता चलता है।

- **व्यक्ति अध्ययन (केस स्टडी)**

केस स्टडी विधि का सर्वप्रथम प्रयोग फ्रेड्रिक ली प्ले ने सन् 1829 में सामाजिक विज्ञान में किया था। वर्ष 1967 में बारने ग्लेजर एवं एन्सेलम स्ट्रॉस जैसे समाजशास्त्रियों ने पुनः इसे परिष्कृत रुप से सामाजिक विज्ञान में नवीन सिद्धान्त के ने रूप में प्रयुक्त किया। वर्तमान में केस स्टडी का प्रयोग सर्वाधिक शिक्षा जगत में किया जा रहा है। आज इसे प्रॉब्लम बेस्ड लर्निंग (Problem Based Learning) के रुप में अधिक जाना जाता है।

केस स्टडी से तात्पर्य किसी व्यक्ति वस्तु, स्थिति की भली-भाँति जाँच करना व जानना है। इसका बुनियादी आधार विद्यार्थी की जिज्ञासु प्रवृत्ति को माना जाता है। दूसरे शब्दों में मनुष्य का सम्पूर्ण ज्ञान उसकी जिज्ञासु, प्रवृत्ति का परिणाम है और केस स्टडी किसी ज्ञान अनुभव को पाने का साधन है।

इस विधि में व्यक्ति को स्वयं समस्या का समाधान ढूँढने में सक्रिय भूमिका रहती है, जबकि अध्यापक विद्यार्थी को समस्या से परिचित कराता है।

युंग के अनुसार, "केस स्टडी किसी इकाई में जीवन के विश्लेषण की पद्धति है चाहे वह एक व्यक्ति, परिवार, संस्था, अस्पताल, सांस्कृतिक समूह या सम्पूर्ण समुदाय है।" अतः केस स्टडी बालक की विशेषताओं, गुण, दोष एवं असमानताओं का विश्लेषण है, जिसके आधार पर बालक को उचित मार्गदर्शन अथवा परामर्श दिया जाता है जिससे उसकी समस्याओं का समाधान हो सके।

www.studyofeducation.com

संचयी वृत्ति

संचयी वृत्ति वह रिकॉर्ड होता है, जिसमें किसी छात्रा या छात्र के अध्ययन के दौरान समय-समय पर आयोजित विभिन्न मूल्यांकन, निर्णय के परिणाम शामिल होते हैं। सामान्यतः इसमें बालक के जीवन के विभिन्न पहलुओं या सम्पादित शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक एवं मनोवैज्ञानिक जानकारी शामिल होती है। यह बालक के व्यक्तित्व के लिए यथासम्भव व्यापक चित्र प्रस्तुत करता है। अतः कहा जा सकता है कि मूल रुप से संचयी रिकॉर्ड एक ऐसा दस्तावेज है जिसमें किसी विशेष बालक या बालिका के विषय में विश्वसनीय जानकारियाँ दी जाती हैं।

इसलिए विद्यालय में अपने लम्बे प्रवास के दौरान उनकी सहायता करने के उद्देश्य से सम्बन्धित बालक की वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत करता है जो विद्यालय छोड़ने के समय शैक्षिक, व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत सामाजिक प्रकृति की समस्या के समाधान में सहायता कर सके।

जोन्स के अनुसार, "एक छात्र का स्थायी रिकॉर्ड जिसे स्कूल द्वारा उद्घटित रखा जाता है। यह उनके स्कूल की उपलब्धि, उपस्थिति, स्वास्थ्य, परीक्षण स्कोर एवं प्रासंगिक डाटा के बारे में जानकारी के साथ उनका शैक्षिक इतिहास है, "यदि संचयी रिकॉर्ड फोल्डर में एकसाथ रखा जाता है, तो उसे संचयी रिकॉर्ड लिफाफा (Cumulative Record Envelope, CRE) कहा जाता है तथा जब संचयी रिकॉर्ड को कार्ड में रखा जाता है तो इसे संचयी रिकॉर्ड कार्ड (Cumulative Record Card, CRC) कहा जाता है।

साक्षात्कार

व्यक्ति के कुछ पक्षों के बारे में प्रमापीकृत परीक्षणों की सहायता से बहुत प्रकार की सूचनाएँ एकत्र कर सकते हैं लेकिन अन्य पक्षों के बारे में कुछ अलग विधियों द्वारा संकलन की आवश्यकता होती है, अप्रमापीकृत परीक्षणों के अन्तर्गत साक्षात्कार का विशेष महत्त्व है। विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों के अनुसार साक्षात्कार की परिभाषाएँ निम्न हैं

पालिन यंग के अनुसार, "साक्षात्कार वह क्रमबद्ध विधि है, जिसके द्वारा एक व्यक्ति अपेक्षाकृत अजनबी व्यक्ति के जीवन में प्रवेश करता है।" .

विघम तथा मूरे के अनुसार, "एक गम्भीर वार्तालाप, जो सन्तुष्टि के अतिरिक्त नियमित उद्देश्य की ओर निर्देशित होता है, साक्षात्कार है।"

जॉन जी डार्ले के अनुसार, "साक्षात्कार एक ऐसी परिस्थिति है, जिसमें प्रार्थी स्वयं को अच्छी तरह समझ सके।"

अतः कहा जा सकता है कि साक्षात्कार निर्देशन प्रक्रिया की आत्मनिष्ठ विधि है, जिसमें निश्चित उद्देश्य के साथ वार्तालाप किया जाता है।

साक्षात्कार के प्रयोजन

साक्षात्कार के प्रयोजन निम्नलिखित हैं

www.studyoneducation.com

- पहले से एकत्रित सूचना में विस्तार करना तथा नवीन जानकारी प्राप्त करना। प्रार्थी के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना।
- पूर्व एकत्रित तथ्यों को साक्षात्कार द्वारा सत्यापित करना।
- प्रार्थी की समस्याओं के विभिन्न कारणों का निदान करना।
- प्रार्थी के हाव-भाव का अध्ययन करना।
- प्रार्थी को प्रेरणा प्रदान करके स्वयं में रुचि लेने हेतु प्रेरित करना।
- सामाजिक या मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के निरन्तर प्रभावों को जानना।

साक्षात्कार की उपयोगिता या महत्त्व

निर्देश व परामर्श साक्षात्कार के बिना अधूरा है। साक्षात्कार के महत्त्व निम्नलिखित हैं

- विभिन्न प्रकार की समस्याओं को समझने में सहायक है।
- सम्पूर्ण रुप से व्यक्तित्व को समझा जा सकता है।
- साक्षात्कारकर्ता आवश्यकतानुसार प्रक्रिया बदल सकता है अर्थात् साक्षात्कार की प्रकृति लचीली है। यह विधि समस्या पर अधिक केन्द्रित है।
- यह विधि सभी आयु के विद्यार्थियों के लिए लाभकारी है।
- साक्षात्कार द्वारा प्रार्थी की अतीत की घटनाओं के बारे में जाना जा सकता है।
- साक्षात्कार द्वारा प्राप्त सूचनाएँ विश्वसनीय होती हैं, यदि सही तथ्यों की प्राप्ति होती है।

www.studyofeducation.com

साक्षात्कार की सीमाएँ

इस विधि की सीमाएँ निम्नलिखित हैं

- इस विधि द्वारा प्रार्थी का तनाव कुछ ही समय के लिए दूर होता है।
- यह आत्मनिष्ठ प्रक्रिया है।
- साक्षात्कार में सदैव सही जानकारी प्राप्त नहीं होती।
- अल्प समय में व्यक्ति के बारे में जानना कठिन है।

परामर्शन या उपबोधन (Counselling)

परामर्शन का तात्पर्य संयुक्त खोज की प्रक्रिया से होता है, जिसमें एक ओर वह व्यक्ति होता है, जिसे परामर्श दिया जाता है और दूसरी ओर वह प्रशिक्षित एवं सक्षम व्यक्ति होता है, जो उस व्यक्ति को अपनी क्षमता को समझने तथा उसको विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करता है तथा इस मार्ग में उत्पन्न बाधाओं को दूर करने का उपाय बताता है।

परामर्शन की परिभाषाएँ

परामर्शन की परिभाषाएँ निम्न हैं

रेबर तथा रेबर ने कहा है कि "परामर्श एक व्यापक शब्द है, जिसका उपयोग किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान में सहायता करने, भविष्य के लिए बनाने आदि से सम्बद्ध साक्षात्कार, परीक्षण, निर्देशन, उपदेश आदि की अनेक प्रक्रियाओं के लिए किया जाता है, जो चिकित्सक वैवाहिक समस्याओं, औषध दुरुपयोग, व्यावसायिक चयन, सामुदायिक कार्य आदि में निर्देशन देने में विशेषज्ञ होते हैं, उन्हें परामर्श-मनोवैज्ञानिक कहा जाता है।"

कार्ल रोजर्स के अनुसार, "परामर्श निर्धारित रुप से स्वीकृत जो उपबोध्य (प्रार्थी) को स्वयं को समझने में सहायता प्रदान करता है, जिससे वह नवीन ज्ञान के प्रकाश में नए निर्णय ले सके।" .

पेरेज के अनुसार, "परामर्शन एक अन्तः क्रियात्मक प्रक्रिया होती है जो परामर्शी जिसे सहायता की आवश्यकता है तथा परामर्शदाता जो प्रशिक्षित होता है एवं वह सहायता करने के लिए प्रशिक्षित भी होता है, एकसाथ मिलाता है।" .

पेपिन्सकी एवं पेपिन्सकी के अनुसार, "परामर्शन वैसी अन्तःक्रिया होती है, जो दो व्यक्तियों जिसे परामर्शदाता तथा परामर्शी कहा जाता है, के बीच होता है, एक पेशेवर परिस्थिति में होता है, जो परामर्शी के व्यवहार में परिवर्तन करने में सहायता करने के ख्याल से किया जाता है तथा उसे सम्पोषित किया जाता है।"

शोस्ट्रोम एवं ब्रेमर के अनुसार, "परामर्श को स्व-समायोजन की ऐसी प्रक्रिया माना जा सकता है, जिसमें परामर्श लेने वाले को इस तरह सहायता की जा सके कि वह पहले से अधिक स्व-निर्देशित एवं स्व-उत्तरदायी बन सके।"

परामर्शन प्रक्रिया के मुख्य अंग

परामर्शन प्रक्रिया के मुख्य तीन अंग हैं-परामर्श प्रार्थी, परामर्शदाता एवं परामर्श का लक्ष्य। परामर्शन की प्रक्रिया का सबसे महत्त्वपूर्ण घटक लक्ष्य निर्धारण है। इन लक्ष्यों को परामर्शदाता वातावरण एवं समाज के अनुरुप ही निर्धारित करता है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि परामर्शदाता एवं परामर्श प्रार्थी के सामाजिक राजनीतिक एवं धार्मिक परिवेश में जो मूल्य एवं

www.studyfeducation.com

आदर्श प्रचलित होगे उसके अनुसार ही परामर्शन के लक्ष्यों का निर्धारण होगा। लक्ष्यों के निर्धारण में व्यक्ति की आवश्यकताओं एवं रुचियों को उसके परिवेश के सन्दर्भ में देखना होता है। इस प्रकार परामर्शन का लक्ष्य परामर्शन प्रार्थी के मूल्यों के पुनरान्वेषण में सहायता प्रदान करना है।

परामर्शन प्रक्रिया के पद

विलियमसन और डरले ने परामर्शन प्रक्रिया के छ: पदों की चर्चा की है

- **विश्लेषण** यह वह प्रक्रिया है, जिसमें तथ्यों का संकलन किया जाता है। ताकि परामर्श प्रार्थी का अध्ययन किया जा सके।
- **संश्लेषण** इस पद में एकत्रित की गई जानकारी को संगठित किया जाता है।
- **निदान** इस पद में समस्या के कारणों के बारे में निष्कर्ष निकाला जाता है।
- **पूर्व अनुमान** निदान के उपयोग के बारे में कथन देने को पूर्व-अनुमान कहते हैं।
- **परामर्श** परामर्शदाता एवं प्रार्थी द्वारा समायोजन के लिए उठाए गए कदमों को इस पद में रखा गया है। .
- **अनुवर्तन** परामर्शदाता की सेवाओं की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करने या नई समस्याओं के हल में परामर्श प्रार्थी की सहायता करने के प्रयास इस पद में शामिल हैं। .

www.studyofeducation.com

परामर्शन के उद्देश्य

परामर्शन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं

- **सेवार्थी की समस्या की पहचान करना** सलाहकार या परामर्शदाता सबसे पहले यह निर्धारित करने का प्रयास करता कि वह जिस व्यक्ति को परामर्श देता है, वास्तव में वह किस समस्या या कठिनाई से पीड़ित है।
- **संज्ञान सूचनाएँ प्राप्त करना** सेवार्थी की समस्या के सम्बन्ध में आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त करना होता है। जब परामर्शदाता अपने सेवार्थी की समस्या की पहचान कर लेता है, तो इसके बाद उसका प्रयास होता है कि समस्या से सम्बन्धित संगत या आवश्यक सूचनाओं का संग्रह करना होता है। .
- **सेवार्थी तथा परामर्शदाता के बीच विश्वास स्थापित करना** परामर्शदाता सर्वप्रथम अपने सेवार्थी के साथ अपने प्रति विश्वास विकसित करता है। यह लक्ष्य जिस हद तक प्राप्त हो पाता है, परामर्श के सफल होने की सम्भावना उतनी ही अधिक होती है। .

- **सेवार्थी तथा परामर्शदाता के बीच पारस्परिक समझ को विकसित करना** परामर्श प्रक्रिया के माध्यम से कोशिश की जाती है कि दोनों एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ सकें ताकि परामर्शदाता को सेवार्थी के सम्बन्ध में सही सूचना मिल सके और सेवार्थी अपने परामर्शदाता की सलाह का पालन समुचित रुप से कर सके। .
- **सेवार्थी को अपनी योग्यताओं, मनोवृत्तियों को समझने तथा व्यक्त करने में मदद** की परामर्श का लाभ सेवार्थी को तब मिलता है, जब वह अपनी आवश्यकताओं, योग्यताओं आदि को जान जाता है तथा समुचित रुप से उन्हें व्यक्त कर पाता है।
- **शैक्षिक तथा व्यावसायिक पसन्द की योजना बनाना** परामर्शदाता, सेवार्थी की शैक्षिक तथा व्यावसायिक पसन्द के अनुसार अनुकूल योजना बनाता है। परामर्शदाता सेवार्थी के सभी संगत पक्षों का आकलन करने के बाद शिक्षा तथा व्यवसाय से सम्बन्धित किसी अनुकूल योजना का सुझाव देता है।
- **सामाजिक कौशलों तथा सामाजिक समायोजना को विकसित करना** परामर्श का एक लक्ष्य सेवार्थी में सामाजिक कौशलों को विकसित करना है, ताकि वे सामाजिक रुप से समायोजित हो सकें।

www.studyfeducation.com

परामर्शन के उपागम (Approaches to Counselling)

परामर्शन प्रदान करने तथा प्राप्त करने के विभिन्न तरीके होते हैं तथा परामर्शन प्रक्रिया में परामर्शक तथा परामर्श लेने वाले की परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं तथा उनका अपना अलग-अलग योगदान होता है। इन्हें परामर्शन के उपागमों को संज्ञा दी जाती है। इस प्रक्रिया में मुख्य रूप से जिन उपागमों का प्रयोग होता है, उनका वर्णन निम्नलिखित है

निदेशात्मक परामर्शन

निदेशात्मक परामर्शन (Counselling Directive) में परामर्शक तथा परामर्श प्राप्तकर्ता उसकी समस्याओं को सुलझाने, उसका विकास करने तथा व्यवहार में सुधार लाने जैसी बातों को लेकर उसे क्या करना चाहिए और क्या नहीं, ऐसे निर्देश दिए जाते हैं। इस प्रकार का परामर्श पूर्ण रूप से परामर्शक पर ही केन्द्रित होता है। परामर्शक के पास जब कोई सलाह लेने आता है, तो वह पहले उसकी समस्या पर ध्यान केन्द्रित करता है तथा समस्या का विश्लेषण कर यह जानने का प्रयास करता है कि उसकी यह समस्या किन कारणों से है, यह कितनी सामान्य या गम्भीर है, इसके पश्चात् वह अपने अनुभव के आधार पर समाधान खोजने का प्रयास करता है।

इसके बाद वह परामर्श प्राप्तकर्ता को अपने द्वारा तय किए मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता है और यह जानने का प्रयास करता है कि उसके द्वारा सुझाया गया समाधान कितना सहायक सिद्ध हुआ है। परामर्शक इस बात का ध्यान रखता है कि परामर्श प्राप्तकर्ता

को किसी भी परामर्श के लिए बाध्य ना किए जाए और न ही उस पर पूर्णतया निर्भर बनाया जाए। यद्यपि समाधान खोजना एवं बताना वह अवश्य ही अपने हाथ में रखता है।

इस प्रकार के परामर्श में यह मूलभूत धारणा कार्य करती है कि परामर्शक परामर्श प्राप्तकर्ता की तुलना में अधिक सक्रिय, ज्ञाता, जानकार एवं सन्तुलित व्यक्तित्व का प्रतीत होता है। उसे इस बात का ज्ञान होता है कि किस प्रकार समस्या तक सरलता से पहुँचा जाए तथा किस प्रकार समस्या का समाधान किया जाए।

अनिदेशात्मक या गैर-निदेशात्मक परामर्शन -

अनिदेशात्मक परामर्श (Non-Directive Counselling) का उद्देश्य निदेशात्मक परामर्श की भाँति परामर्शक की ओर से परामर्श प्राप्तकर्ता की ओर से परामर्श प्राप्त कर उन पर विचार करना ही नहीं होता, बल्कि ऐसी परिस्थितियों का निर्माण तथा तकनीकों का प्रयोग करना है जिनसे परामर्श लेने वाले को स्वयं राह चुनने, उस पर चलने तथा अपनी समस्याओं के निवारण में अधिक से अधिक आत्मनिर्भरता प्राप्त हो सके।

इस प्रकार का परामर्श परामर्शक केन्द्रित नहीं रहता, बल्कि परामर्श परामर्श प्राप्तकर्ता को सलाह देने से पूर्व बोलने का पर्याप्त अवसर देता प्राप्तकर्ता केन्द्रित बन जाता है। इस प्रकार के परामर्श में परामर्शक, है। इसके लिए वह परिस्थितियों तथा परिवेश की इस प्रकार व्यवस्था करता है कि परामर्श लेने वाले की शंका तथा भय समाप्त हो जाए तथा वह परामर्शक पर विश्वास कर सके। इसके पश्चात् परामर्श प्राप्तकर्ता को अपनी समस्या स्पष्ट रुप से व्यक्त करने को कहा जाता है। इस स्वतन्त्र अभिव्यक्ति के द्वारा वह अपनी दमित इच्छाओं, संवेगों, आदि को व्यक्त कर तनाव से मुक्ति का अनुभव करता है।

www.studyofeducation.com

साथ ही परामर्शक को उसकी वास्तविक स्थिति एवं समस्या का ज्ञान हो जाता है। वह उसमें अभिप्रेरणा का संचार करके उसे इस योग्य बनाने का प्रयास करता है कि वह स्वयं अपनी समस्याओं का उचित समाधान कर सके तथा अपने व्यवहार एवं अभिवृत्तियों में अपेक्षित सुधार ला सके तथा अपने लक्ष्यों को इस प्रकार संगठित कर सके कि उसे अपनी शक्तियों के अन्तर्गत ही अपने लक्ष्यों की प्राप्ति कर सके। यह परामर्श उपागम इस मूल धारणा पर कार्य करता है।

परामर्श तभी सफल हो सकता है। जब परामर्श लेने वाले की आवश्यकताओं, रुचियों शक्तियों एवं योग्यता के अनुरुप उसे क्रियान्वित किया जाए तथा परामर्श लेने और देने वाले के बीच सक्रिय अन्तःक्रिया हो। दोनों पर्याप्त रुप से सक्रिय रहने चाहिए तथा मुख्य भूमिका परामर्श लेने वाले के द्वारा ही निभाई जानी चाहिए, क्योंकि उसकी तत्परता तथा आत्मनिर्भरता बहुत ही आवश्यक है। परामर्शक द्वारा किए जाने वाले कार्यों के स्थान पर परामर्श लेने वाले के द्वारा जो योगदान परामर्श प्रक्रिया में दिया जाता है, उसका महत्त्व सदैव ही अधिक माना जाता है।

समन्वित परामर्शन

निदेशात्मक एवं अनिदेशात्मक परामर्श प्रक्रिया का अनुपालन करना सभी प्रकार की परिस्थितियों के लिए उपयुक्त नहीं रहता। पूरी तरह से परामर्शदाता केन्द्रित अथवा पूरी तरह से परामर्श प्राप्तकर्ता केन्द्रित परामर्श प्रक्रिया को संगठित करना उपयुक्त नहीं ठहराया जा सकता। आवश्यकता यह है कि किसी भी एक प्रकार के दृष्टिकोण या धारणा से बँधकर न रहा जाए बल्कि जिसमें जो बातें अच्छी लगे ग्रहण कर लें तथा समन्वयकारी रास्ता या उपागम का प्रयोग किया जाए, जिससे परामर्श प्रक्रिया में अधिक से अधिक अच्छे परिणामों की प्राप्ति हो सके।

इस प्रकार के उपागम को सम्बन्धित उपागम या विभिन्न मतावलम्बी उपागम के नाम से भी जाना जाता है। समन्वित परामर्श (Eclectic Counselling) प्रक्रिया में जैसे-जैसे साधन एवं परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं इसलिए परामर्श देने की प्रक्रिया जहाँ जैसा भी परिवर्तन चाहती है उसी के अनुरुप उसे लचीला तथा परिवर्तनशील बनाते रहना चाहिए। जैसे कभी उनकी बातें सुननी चाहिए, तो कभी अपने विचार आगे रखने चाहिए, कभी निदेशन देने चाहिए तो कभी उनके द्वारा पकड़े मार्ग की निगरानी रखनी चाहिए तथा इस प्रकार की भूमिका निभानी चाहिए कि व्यक्ति अपनी समस्या के समाधान में आत्म-निर्भर हो सके तथा उसके व्यवहार में अपेक्षित सुधार हो जाए। समस्या का समाधान होने पर परामर्श प्रक्रिया को विराम दे देना चाहिए तथा इसे ऐसे मोड़ देना चाहिए कि व्यक्ति पुनः ऐसी या अन्य समस्या में पड़ने पर अपने विकास के प्रति पूरी तरह संचेत होकर सही मार्ग पर चल सके।

संज्ञानात्मक-व्यवहारवादी परामर्शन (एल्बर्ट एलिस REBT)

www.studyofeducation.com

संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं में चिन्तन, प्रत्यक्षण, मूल्यांकन तथा आत्मकथनों को ध्यान में रखकर परामर्श दिया जाता है। इस सन्दर्भ में एल्बर्ट एलिस की तर्कसंगत भावनात्मक व्यवहार चिकित्सा (Rational Emotive Behaviour Therapy, REBT) प्रमुख है, जिसे प्रारम्भ में रेशनल थेरेपी एवं रेशनल इमोशनल थेरेपी भी कहा जाता था। REBT को अमेरिका की प्रसिद्ध मनोचिकित्सक एवं मनोवैज्ञानिक अल्बर्ट एलिस द्वारा विकसित किया गया था जो एशिया, ग्रीक, रोमन एवं आधुनिक दार्शनिकों की कई शिक्षाओं से प्रेरित थे। REBT एक सक्रिय निदेशात्मक, दार्शनिक एवं आनुभविक रुप से आधारित मनोचिकित्सा है। जिसका उद्देश्य भावनात्मक एवं व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं को हल करना तथा लोगों को खुशहाल बनाने में सहायता कर जीवन को सुखमय बनाना है। REBT सज्ञानात्मक व्यवहार थेरेपी का पहला रुप है, जो 1950 के दशक के मध्य एल्बर्ट एलिस द्वारा पहली बार प्रस्तुत किया गया। अत: ये संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा के संस्थापकों में से एक हैं। एलिस का मानना था कि तर्कसंगत विश्लेषण एवं संज्ञानात्मक पुनर्निर्माण के माध्यम से लोग अपने मूल तर्कहीन विश्वासों के प्रकाश में आत्म-पराजय को समझ सकते हैं और फिर अधिक तर्कसंगत निर्माण विकसित कर सकते हैं।

संज्ञानात्मक-व्यवहारवादी परामर्शन में एल्बर्ट एलिस का योगदान

वर्ष 1954 में एलिस ने अपनी नई तकनीकों को अन्य चिकित्सकों को पढ़ाना शुरु किया और वर्ष 1957 तक उन्होंने औपचारिक रुप से पहली संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा का प्रस्ताव रखा कि चिकित्सक लोगों को उनकी सोच एवं व्यवहार को भावनात्मक और व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं के उपचार के रुप में समायोजित करने में सहायता करते हैं। एलिस ने हाउ टू लिव विथ अ न्यूरोटिक प्रकाशित किया, जो उनकी नई पद्धति पर विस्तृत थी। वर्ष 1960 में एलिस ने शिकागो में अमेरिकन साइकोलॉजिकल एसोसिएशन सम्मेलन में अपने नए दृष्टिकोण पर पेपर प्रस्तुत किया। उस समय, प्रयोगात्मक मनोविज्ञान में प्रचलित रुचि व्यवहारवाद थी, जबकि नैदानिक मनोविज्ञान में फ्रॉयड, युंग, एडलर एवं पर्ल्स जैसे मनोविश्लेषणात्मक मनोवैज्ञानिक थे। इन सबके बावजूद एलिस ने संज्ञानात्मक, भावनात्मक एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण को विशेष महत्त्व दिया।

वर्ष 1959 तक इंस्टीट्यूट ऑफ रेशनल लिविंग को एक गैर-लाभकारी संगठन के रुप में स्थापित किया। एलिस ने अपनी पहली पुस्तक (1962) में 'रेशनल इमोटिव बिहेवियर थेरेपी' प्रकाशित की। REBT का फ्रेमवर्क मानता है कि मनुष्यों में जन्मजात तर्कसंगत (सामाजिक रुप से सहायता करने वाले एवं रचनात्मक) और अपरिमेय (स्व-पराजित, सामाजिक रुप से पराजित) प्रवृत्ति एवं झुकाव दोनों हैं। REBT का दावा है कि लोग बड़ी संख्या में जान-बूझकर और अनजाने में आत्म-दोष, आत्म दया, नैदानिक क्रोध, अपराध, शर्म, अवसाद एवं चिन्ता जैसी भावात्मक कठिनाइयों का निर्माण करते हैं एवं शिथिलता, मजबूरी, परिहार, व्यसन जैसे व्यवहार से वापसी करते हैं।

www.studyofeducation.com

एल्बर्ट एलिस REBT का महत्त्व

REBT को एक शैक्षिक प्रक्रिया के रुप में लागू किया जाता है, जिसमें चिकित्सक अकसर सक्रिय प्रत्यक्ष रुप से सिखाता है कि कैसे तर्कहीन एवं आत्मपराजित मान्यताओं और दर्शन को पहचाना है, जो प्रकृति में कठोर चरम, अवास्तविक, अतार्किक, निरंकुश एवं सक्रिय रुप से सवाल करे एवं उन्हें विवादित करे तथा अधिक तर्क संगत और स्वसहायता वाले लोगों के साथ बदले अलग-अलग संज्ञानात्मक, भावात्मक व्यावहारिक एवं गतिविधियों का प्रयोग करके चिकित्सक और होमवर्क अभ्यास में सहायता के साथ अधिक तर्कसंगत, आत्म सहायता करने, सोचने, भावात्मक और व्यवहार करने के रचनात्मक तर्कसंगत तरीके प्राप्त कर सकें।

मानवतावादी या प्रभाववादी परामर्शन

मानवतावादी परामर्शन सिद्धान्त (Humanistic Counselling) मूलतः अस्तित्ववादी मानववादी दर्शन परम्परा से उत्पन्न हुआ है। इसमें परामर्शप्राथी को प्रभावपूर्ण ढंग से समझने पर विशेष बल दिया जाता है। केम्प (1971) रोजर्स (1975), बारुथ तथा हूबर

(1985) जैसे विद्वान् इस सिद्धान्त के प्रबल समर्थक हैं। उनका मत है कि मानवीय अन्तःक्रिया ही प्रभाववादी परामर्शदाता के लिए ध्यान का केन्द्र है। मानवतावादी मनोविज्ञान को शेफर (1978) की प्रमुख मान्यताएं ही इस सिद्धान्त का आधार हैं, जिन्हें संक्षेप में निम्न रुपों में व्यक्त किया जा सकता है

अनुभव की विलक्षणता वैयक्तिक अनुभव की विलक्षणता तथा वैषयिक वास्तविकता अधिक महत्त्वपूर्ण है।
समग्रता व्यक्ति के समग्र रुप से उसके वर्तमान अनुभवों के सन्दर्भ में ही जाना जा सकता है।
सीमाबद्धता यद्यपि जैवकीय तथा पर्यावरणीय कारक किन्हीं विशिष्ट रुपों में व्यक्ति को सीमाबद्ध कर सकते हैं। फिर भी व्यक्ति को विकसित होने व अस्तित्व निर्माण की क्षमताएँ असीमित रहती हैं। जनतन्त्रीय वातावरण में मुख्यतः ऐसा होता है।
आत्म परिभाषा मनुष्य को किसी पदार्थ या तत्त्व के रुप में सदैव के लिए एक-सा परिभाषित नहीं किया जा सकता। मनुष्यता सदैव ही आत्म-परिभाषण की प्रक्रिया में संलग्न रहती है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मानवतावादी सिद्धान्त की तीन प्रमुख विशेषताएँ प्रथम उनकी अस्तित्ववादी धारणा, द्वितीय व्यक्ति केन्द्रित स्वरुप, तृतीय समग्रतावादी दृष्टिकोण।

व्यक्ति केन्द्रित परामर्शन

कार्ल रोजर्स ने गैर-निर्देश, क्लाण्इट केन्द्रित एवं व्यक्ति केन्द्रित (Person Centred Counselling) शब्द चिकित्सकीय दृष्टिकोण का वर्णन करने के लिए प्रयोग किए हैं। वर्ष 1942 में कार्ल रोजर्स ने 'परामर्श और मनोचिकित्सा' का प्रकाशन किया था। इसमें इन्होंने गैर-निर्देशक चिकित्सा के विचार प्रस्तुत किए, क्योंकि यह चिकित्सा के कार्य का पालन करने के लिए ग्राहक के नेतृत्व का था। व्यक्ति केन्द्रित परामर्श मानव प्रकृति की कुछ महत्त्वपूर्ण पूर्वकल्पनाओं; जैसे-स्वतन्त्रता, विवेकपूर्णतावाद, पूर्णतावाद, परिवर्तनशीलतावाद, आत्मनिष्ठा, अग्रलक्षता तथा अज्ञेयता पर अधिक बल दिया है।

जबकि मानव प्रकृति के शरीरगठनात्मक पूर्वकल्पना पर नाम-मात्र का ध्यान दिया गया है। रोजर्स के अनुसार, प्राणी एक ऐसा दैहिक जीव है, जो शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों ही प्रकार से कार्य करता है। इसमें प्रासंगिक क्षेत्र तथा आत्मन दोनों ही सम्मिलित होते हैं। इन्होने परामर्शक एवं परामर्श प्राप्तकर्ता में अन्तःक्रिया को विशेष महत्त्व दिया है। दोनों को पर्याप्त सक्रिय रहना चाहिए, परन्तु मुख्य भूमिका परामर्श लेने वाले के द्वारा ही निभायी जानी चाहिए, क्योंकि उसकी तत्परता तथा आत्मनिर्भरता अत्यन्त आवश्यक है। परामर्शी प्राप्तकर्ता की समस्याओ के समाधान तथा व्यवहार परिमार्जन में उसके भूत की जगह वर्तमान पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।

www.studyofeducation.com

परामर्शदाता की समस्या तक जाने या छानबीन करने की अपेक्षा वर्तमान व्यवहार, आवश्यकताओं तथा भावनाओं पर अधिक ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। क्योंकि परामर्श प्राप्तकर्ता से भली-भाँति सामंजस्य स्थापित करते हुए उसे परामर्श प्रक्रिया में सक्रिय बनाया जा सके। प्रत्येक व्यक्ति में अच्छाई एवं

शक्तियों का कोष अन्तर्निहित होता है तथा प्रत्येक व्यक्ति स्वय में अद्वितीय है। आवश्यकता इस बात की है कि किस प्रकार उसको शक्तियों को जगाया जाए। अगर ऐसा कर दिया जाए तो वह स्वयं ही अपनी समस्याओं का समाधान कर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। परामर्शदाता द्वारा किए जाने वाले कार्यों के स्थान पर परामर्श लेने वाले के द्वारा जो योगदान परामर्श प्रक्रिया में दिया जाता है। उसका महत्त्व सदैव ही अधिक माना जाता है। कार्ल रोजर्स ने व्यक्ति केन्द्रित परामर्श की निम्नलिखित विशेषताएँ प्रस्तुत की हैं -

परामर्श प्राप्तकर्ता अनिर्देशित परामर्श का केन्द्र बिन्दु होता है व्यक्ति परामर्श में व्यक्ति को ज्यादा महत्त्व दिया जाता है। परामर्श दाता ऐसा वातावरण प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है कि परामर्श प्राप्तकर्ता उस वातावरण में स्वयं अपनी समस्या का हल ढूँढ लेता है तथा स्वयं को अन्य किसी पर निर्भर नहीं मानता। वह किसी अन्य व्यक्ति से निर्देशित नहीं होता।

व्यक्ति केन्द्रित परामर्शन में व्यक्ति भावनाओं एवं आवेगों का सम्मान करता है व्यक्ति केन्द्रित परामर्श का मुख्य रुप से सम्बन्ध आवेगो से होता है। यहाँ व्यक्ति की भावनाओं एवं आवेगों को पूर्ण सम्मान दिया जाता है, जिससे उसमें किसी प्रकार की हीन भावना या निराशा उत्पन्न नहीं होती। अतः व्यक्ति केन्द्रित परामर्शक भावना प्रधान है बुद्धि प्रधान नहीं।

प्रेमपूर्ण सहयोगात्मक वातावरण इस परामर्श के अन्तर्गत परामर्शक एक मित्र के रूप में सहायता करता है। वह प्रजातान्त्रिक मूल्यों को मानता है तथा व्यक्ति को स्वतन्त्र अभिव्यक्ति के अवसर देता है। वास्तव में वह एक ऐसा सुन्दर माहौल तथा ताल-मेल बिठाता है, जिसके द्वारा व्यक्ति स्वयं अपनी समस्याओं का समाधान खोज लेता है। वह व्यक्ति की भावनाओं का आदर ही नहीं, बल्कि विश्वास भी प्राप्त कर लेता है।

परामर्शन के सिद्धान्त

परामर्श के कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त हैं। एक परामर्शदाता के लिए सैद्धान्तिक आधारों का परिचायक होना अत्यन्त आवश्यक है।

अध्ययन की सुविधानुसार परामर्शन के प्रमुख तीन सिद्धान्तों का वर्णन निम्न प्रकार है

www.studyofeducation.com

तर्कसंगत (बोधात्मक) सिद्धान्त (Rational) बोधात्मक सिद्धान्त में यह स्वीकार किया जाता है कि संज्ञान या बोध व्यक्ति के संवेगों व व्यवहारों के सबसे प्रबल निर्धारक हैं। व्यक्ति जो सोचता है उसी के अनुसार अनुभव व व्यवहार करता है। तर्कसंगत सिद्धान्त की एक अन्य लोकप्रिय एवं प्रचलित विधा कार्य-सम्पादन विश्लेषण के सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें व्यवहार की समझ इस मान्यता पर निर्भर करती है कि सभी व्यक्ति अपने पर विश्वास करना सीख सकते हैं। अपने लिए चिन्तन या व्यवहार कर सकते हैं। अपने निर्णय ले सकते हैं तथा अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने में समर्थ हैं।

इस सिद्धान्त की सामान्य परिकल्पनाओं को हेरिस द्वारा निम्न रुपों में दर्शाया गया है

- मैं अच्छा हूँ, आप भी अच्छे हैं यह एक स्वस्थ मानसिक दशा है|
- मैं अच्छा नहीं हूँ, आप भी अच्छे नहीं हैं यह जीवन में निराशावादी दृष्टिकोण रखने वाले लोगों की मानसिकता है।
- मैं अच्छा हूँ, आप अच्छे नहीं हैं यह उस व्यक्ति की मनोस्थिति है जो दूसरे को अपने दुखों का कारण स्वीकार करता है।
- मैं अच्छा नहीं हूँ, आप अच्छे हैं यह लोगों की सामान्य मनोस्थिति है
- जबकि वे अन्यों की तुलना में अपने को शक्तिहीन अनुभव करते हैं।

संवेगात्मक तथा यथार्थवादी (व्यवस्थावादी) सिद्धान्त (Emotive and Reality) इस सिद्धान्त की प्रमुख विशेषता परामर्श का विभिन्न चरणों में संयोजित होना है। चरणो के अनुरुप इस सिद्धान्त में परामर्श की विभिन्न अवस्थाएँ स्वीकार की गई हैं। सभी अवस्थाएँ एक-दूसरे से जुड़ी व अन्तः क्रियाशील मानी जाती हैं। यही व्यवस्था प्रारुप मूलतः इस सिद्धान्त का आधार है व परामर्श की विशिष्ट प्रविधि का जनक है।

संक्षिप्त रुप से इन अवस्थाओं को निम्न प्रकार जाना जा सकता है -

- प्रथम अवस्था (समस्या अन्वेषण)))
- द्वितीय अवस्था (द्विआयामी समस्या परिभाषा
- तृतीय अवस्था (विकल्पों का अभिज्ञान करना)
- चतुर्थ अवस्था (आयोजना
- पंचम अवस्था (क्रिया प्रतिबद्धता)
- षष्ठम अवस्था (मूल्यांकन एवं फीडबैक)

इस सिद्धान्त में भावात्मक पक्ष के साथ-साथ यथार्थ पक्ष अथवा वास्तविक परिस्थितियों को भी विशेष महत्त्व दिया जाता है। इसलिए परामर्श व्यावहारिक, स्वकेन्द्रित व भावात्मक स्थितियों को ध्यान में रखकर यथार्थ परिस्थितियों के अनुकूल होना चाहिए

www.studyineducation.com

जिससे व्यक्ति एकीकरण की ऐसी व्यवस्था की कल्पना में सक्षम हो। जिसके द्वारा व्यक्ति विकास के साथ-साथ समकालीन जगत के लिए लाभदायी वातावरण का निर्माण कर सके।

व्यवहारवादी सिद्धान्त (Behaviouristic) व्यवहारवादी सिद्धान परामर्श प्राप्तकर्ता के अवलोकनीय व्यवहारों पर बल देता है। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि व्यवहारवादी परामर्श प्राप्तकर्ता के अनुभवों की अपेक्षा उसके व्यवहारों को जानने व समझने में अधिक रुचि रखते हैं।

व्यवहारवादी परामर्शदाता के लिए, भावनाओं या जागरुकता के स्तरो की अन्तर्दृष्टि पर्याप्त नहीं है। वह परिवर्तन के लिए क्रिया या व्यवहार को शब्दों की अपेक्षा अधिक सार्थकता स्वीकार करता है। व्यवहारवादी समस्याग्रस्त व्यक्ति के लक्षणों पर अधिक ध्यान देते हैं। ये समस्याएँ अधिकांशतः परामर्श प्राप्तकर्ता द्वारा अपने व्यवहार करने के ढंग यो व्यवहार करने में असफल होने से सम्बन्धित होती है। इस प्रकार, व्यवहारवादी परामर्शदाता मुख्यतः क्रिया पर बल देता है।

www.studyofeducation.com